श्री रामकृष्ण-विवेकानंद भाव-धारा की एकमात्र हिंदी मासिकी

–८ जनवरी–१९८९ अंक–१

विवेक शिखा

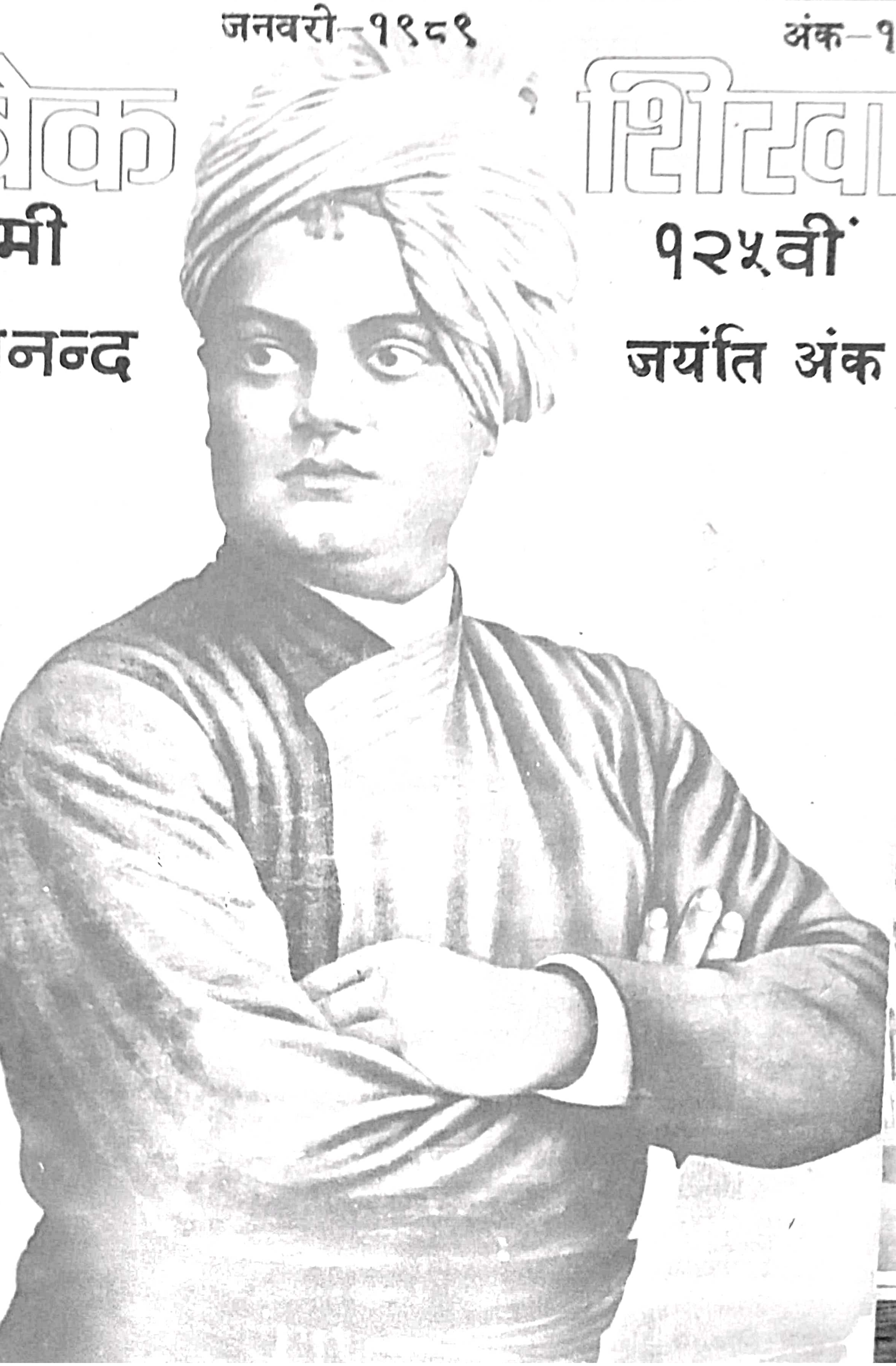

स्वामी विवेकानन्द

१२५वीं जयंति अंक

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

४१. श्री नीरज गुप्ता—रायपुर (मध्य प्रदेश)
४२. डॉ० गीता देवी—४४, टैगोर टाउन, इलाहाबाद
४३. डॉ० शैल पाण्डेय—४१, टैगोर टाउन, इलाहाबाद
४४. श्री रामानन्द गुप्ता—बिसवा (उत्तर प्रदेश)
४५. श्री निशीथ कुमार बोस—तपन प्रिंटिंग प्रेस, पटना
४६. श्री नरेश कुमार कश्यप—नागपुर (महाराष्ट्र)
४७. श्रीरामकृष्ण विवेकानन्द समिति अमरावती ,,
४८. डॉ० दर्शन लाल—कुराली (पंजाब)
४९. श्री गोविन्द ढनढनिया—कलकत्ता (प० बंगाल)
५०. श्री निखिल शिवहरे—दमोह (म० प्र०)
५१. श्री बी० भी० नागोरी—कलकत्ता (पं० बंगाल)
५२. श्री पवन कुमार वर्मा—समस्तीपुर (बिहार)
५३. श्री चितुभाई भलाभाई पटेल—खेड़ा (गुजरात)
५४. श्री एस० सी० डाबरीवाला—कलकत्ता (प० बं०)
५५. श्री गोपाल कृष्ण दत्ता—जयपुर (राजस्थान)
५६. श्री बृजेश चन्द्र बाजपेयी—जयपुर (राजस्थान)
५७. श्री बनवारी लाल सर्राफ—कलकत्ता (प० बं)
५८. श्रीमती गौरी चट्टोपाध्याय—एलेन गंज, इलाहाबाद
५९. श्री बसन्त लाल जैन—कैथल (हरियाणा)
६०. डॉ० श्यामसुन्दर बोस दूधपुरा बाजार (समस्तीपुर)
६१. श्री केशव दत्त वशिष्ठ—हिसार (हरियाणा)
६२. श्री के० सी० बागरी—कलकत्ता (प० बंगाल)
६३. मधु खेतान—कलकत्ता (प० बंगाल)
६४. प्रधान अध्यापिका—डोरांडा गर्ल्स हाई स्कूल, राँची
६५. रामकृष्ण मिशन स्टूडेन्ट्स होम—मद्रास
६६. श्री विनयशंकर सिन्हा—दाऊदपुर, छपरा
६७. रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम—इलाहाबाद
६८. श्रीमती मीरा मित्रा—इलाहाबाद
६९. स्वामी शान्ति नाथानन्द—रामकृष्ण मठ, इलाहाबाद
७०. श्रीमती उषा श्रीकांत रेगे—दादर, बम्बई

इस अंक में

		पृष्ठ
१. श्रीरामकृष्ण ने कहा है		३
२. भजन	श्रीशारदा तनय	४
३. स्वामी विवेकानन्द और भारत का नव निर्माण	सम्पादकीय सम्बोधन	५
४ बेलुड़ मठ में ठाकुर प्रतिष्ठा	शरत्चन्द्र चक्रवर्ती	६
४. मनीषियों की दृष्टि में स्वामी विवेकानन्द	स्वामी विदेहात्मानन्द	८
५. स्वामी विवेकानंद के सेवायोग का मूल स्रोत	स्वामी अशोकानन्द	१३
६ नरेन्द्र नाथ और सत्य की खोज	स्वामी शशांकानन्द	२४
७. स्वामी विवेकानन्द का व्यावहारिक जीवन दर्शन	स्वामी सत्यरूपानन्द	३०
८ स्वामी विवेकानन्द का सन्देश	टी. एल. वास्वानी	४२
९. स्वामी विवेकानन्द के संदेश को समझने के सप्त सोपान	श्रीमती गौरी चट्टोपाध्याय	५०
१०. स्वामी विवेकानन्द ने कहा था		५५
११ स्वामी विवेकानन्द की महानता	स्वामी ब्रह्मेशानन्द	५६
१२. स्वामी अद्भुतानन्द की जीवन कथा	श्री चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय	६१

रामकृष्ण मठ और मिशन के महाध्यक्ष

स्वामी गम्भीरानन्दजी महाराज की महासमाधि

बड़े दुःख के साथ सूचित करना पड़ रहा है कि २६ दिसम्बर, १९८८ ई० की में शाम को रामकृष्ण मठ मिशन के महाध्यक्ष पूज्य स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज ने महासमाधि ले ली। २४ दिसम्बर को हृदय की पीड़ा से आक्रान्त होने पर बेलुड़ मठ से कलकत्ता रामकृष्ण मिशन के सेवा प्रतिष्ठान में उन्हेंभर्ती किया गया। वहीं मंगलवार की शाम को ७ बजकर २७ मिनट पर उन्होंने अंतिम साँस ली। वे ९० वर्ष के थे। बुधवार, २८ दिसम्बर को अपराह्न २ बजे उनके नश्वरशरीर का अंतिम संस्कार किया गया। इसके पूर्व उनके पार्थिव शरीर को बेलुड़ मठ में रखा गया- भक्तों के दर्शनार्थ।

रामकृष्ण मठ और मिशन के ग्यारहवें महाध्यक्ष स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज का संन्यास जीवन ५६ वर्षों से भी अधिक का था। मठ और मिशन के महासचिव और सहअध्यक्ष के अतिरिक्त कई पदों को अलंकृत करने के बाद १९८५ ई० के मार्च में वे अध्यक्ष पद पर अधिष्ठित हुए। २४ दिसम्बर, ८८ के अपराह्न में नदिया और २४ परगने के विभिन्न मठों और मिशन केन्द्रों का भ्रमण कर बारासात होते हुए वे बेलुड़ मठ लौटे। उसके बाद ही वे हृदय रोग से पीड़ित हुए। उसी दिन सेवा प्रतिष्ठान में उन्हें भर्ती किया गया। कलकत्ते के विशिष्ट चिकित्सकों ने वहाँ उनकी चिकित्सा की थी। शरीर त्याग के पूर्व वे काफी प्रफुल्लित थे, डाक्टरों के मतानुसार ईलाज का अच्छा फल भी हुआ था। किन्तु हठात् अन्तिम लग्न आ गया। महा प्रयाण के समय मिशन के विशिष्ट संन्यासीगण, सेवक और डाक्टर उनके निकट ही थे।

रात साढ़े दस बजे अस्पताल से स्वामी गंभीरानन्द जी महाराज का नश्वरशरीर बेलुड़ मठ लाया गया। दुःसंवाद काफी पहले ही पहुँच गया था। वस्तुतः मठ और मिशन के वरिष्ठ संन्यासी गण द्वारा उस दिन शाम को अस्पताल में अपेक्षाकृत अच्छा देखकर लौटने के बाद ही अध्यक्ष महाराज महासमाधि में लीन हो गये। खबर पहुँचते ही मठ और मिशन में शोककी लहर फैल गयी। संन्यासी और ब्रह्मचारीगण शोकार्त हृदय से रिलीफ ऑफिस के आगे इकट्ठे होने लगे। रात में ही आबालवृद्धवनिता सैकड़ों भक्ति उन्हें अंतिम प्रणाम निवेदित करने आ गये। किसी के हाथ में फूल का अर्घ्य, किसी के हाथ में धूपबत्ती। बिशाल जन समागम, किन्तु सर्वत्र शोकपूर्ण स्तब्धता परिव्याप्त थी।

रिलीफ ऑफिस की निचली मंजिल के एक बड़े हॉल में स्वामी गम्भीरानन्द जी की देह रखी हुई थी। दोनों आँखें मुँदी हुईं। मुख मण्डल पर एक आश्चर्यमय दैवी प्रशान्ति। उनकी शय्या को घेरे कर बैठे ब्रह्मचारीगण पाठ करते रहे थे उपनिषद् की ऋचाएँ। संन्यासीगण आ आकर अपनी श्रद्धांजलि दे गये। फूट पड़े रुदन में स्वामी गम्भीरानन्दजी के संगी मति महाराज जी। दोनों ने एक साथ ही ब्रह्मचर्य और संन्यास ग्रहण किया था।

नये अध्यक्ष के निर्वाचन तक वरिष्ठतम संन्यासी पू० स्वामी अभयानन्द (भरत महाराज) अध्यक्ष का कार्य करेंगे।

स्वामी गम्भीरानन्द का दीर्घ संन्यासी जीवन कर्ममय था। उम्र ने कभी उनपर अपना आधिपत्य नहीं जमाया। अत्यन्त दक्षतापूर्वक उन्होंने अध्यक्ष के गुरु दायित्व का निर्वाह किया था। इसके साथ ही दूसरे प्रकार के कार्य भी चलते थे। अस्पताल जाने के पिछले दिन तक भी वे मठ मिशन के काम से नवद्वीप गये थे। वहाँ से लौटने पर ही अस्वस्थ हुए थे। अंतिम दिनों में महाराज की दृष्टि-शक्ति कुछ क्षीण हो गयी थी। फिर भी लिखने पढ़ने के काम में विराम नहीं था। अंग्रेजी और बंगला के अनेक ग्रंथों के प्रणेता मनीषी साधु स्वामी गम्भीरानन्द जी सम्प्रति अंग्रेजी में मधुसूदन सरस्वती की गीता की टीका का अनुवाद कर रहे थे। वह कार्य अधूरा ही रह गया। ७ और ८ दिसम्बर को वे पटना मिशन में थे। उनके अंतिम दर्शन हमने वहाँ किये थे। तब कौन जानता था कि वे इतना शीघ्र हम सबको छोड़ जायेंगे?

विवेक शिखा परिवार पूज्यपाद स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज को अपनी आंतरिक श्रद्धा निवेदित करता है। महाराज जी को शत-शत प्रणाम।

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष — ८ जनवरी—१९८९ अंक — १

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

संपादक
डॉ० केदारनाथ लाभ

सहायक संपादक
शिशिर कुमार मल्लिक
श्याम किशोर

संपादकीय कार्यालय।
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर,
छपरा—८४१३०१
(बिहार)

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य	३०० रु०
वार्षिक	१५ रु०
रजिस्टर्ड डाक से	४० रु०
एक प्रति	३ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग - राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

जाने या अनजाने, भूल से या भ्रम से, किसी भी तरह क्यों न हो, भगवान का नाम लेने से उसका फल अवश्य मिलेगा। कोई नदी पर जाकर स्नान करे तो उसका जैसा स्नान होता है, वैसे ही अगर किसी को पानी में ढकेल दिया जाए तो उसका भी स्नान हो जाता है, और कोई सोया हुआ हो और उस पर पानी डाल दिया जाए तो उसका भी स्नान हो ही जाता है।

(२)

बन्दर का बच्चा अपनी माँ को कसकर पकड़े हुए उससे लिपटा रहता है, परन्तु बिल्ली का बच्चा पड़े-पड़े सिर्फ 'म्याऊँ-म्याऊँ' किया करता है, बिल्ली स्वयं ही उसे मुँह में पकड़कर उठा ले जाती है। बन्दर का बच्चा अगर हाथ छोड़ दे तो नीचे गिर पड़ेगा क्योंकि उसने स्वयं अपनी माँ को पकड़ रखा है। परन्तु बिल्ली के बच्चे को गिरने का भय नहीं है क्योंकि उसे उसकी माँ ने पकड़ रखा है पुरुषकार और ईश्वर निर्भरता में यही अन्तर है।

(३)

मलय पवन के लगने से जिन पेड़ों में कुछ सार है, वे सब चन्दन बन जाते हैं; परन्तु बाँस केला आदि साररहित वृक्षों पर कुछ असर नहीं होता। इसी तरह, भगवत्कृपा पाकर, जिनमें कुछ सार है वे तो तत्काल सद्भाव से परिपूर्ण हो जाते हैं, किन्तु सारहीन विषयासक्त मनुष्य का सहज में कुछ नहीं होता।

(४)

जिस प्रकार पिचकारी की छड़ पिचकारी में अछूती रहती है, उसी प्रकार ईश्वर भी देह में निर्लिप्त होकर रहते हैं।

विवेकानन्द तुम आये

—श्री सारदा तनय

(राग—चंद्रकौंस : ताल—तीव्रा)

जगाने दिव्यता हममें,
विवेकानन्द तुम आये ।
उगाने ज्ञान-रवि तम में
विवेकानन्द तुम आये ॥ ध्रु० ॥

घिरा भ्रम-मोह से भारत,
चला था डूबने पूरा ।
उठाने पंक से उसको
विवेकानन्द तुम आये ॥१

सभी जीवों में छिपके जो,
बसी है ब्रह्म शक्ति महान्
प्रकट उसको करा देने
विवेकानन्द तुम आये ॥२

विराजे एक जो आत्मा
लिए बहु रूप दुनिया में
झलक उसकी दिखाने को,
विवेकानन्द तुम आये ॥३

"अमृत के पुत्र हो तुम तो
तुम्हीं शिव जीव के भ्रम में"
यही वाणी सुनाने को
विवेकानन्द पुम आये ॥४

□

सम्पादकीय सम्बोधन

स्वामी विवेकानन्द और भारत का नव निर्माण

मेरे आत्मस्वरूप मित्रो !

विवेक शिखा अपने ८वें वर्ष में प्रवेश कर रही है। गत वर्ष स्वामीजी के जन्म के १२५ वर्ष पूरे हो गये। मैं आपको इस अवसर पर हार्दिक शुभ कामनाएँ देता हूँ।

विश्व वंद्य स्वामी विवेकानन्द के सम्बन्ध में उनकी योग्यतम शिष्या भगिनी निवेदिता ने कहा था—'स्वामी विवेकानन्द महान् प्रेमी हैं। उनकी मातृभूमि ही उनकी आराधना की साम्राज्ञी है।" वस्तुतः स्वामीजी के प्रति यह एक सही समझ है। स्वामी विवेकानन्द के पूर्व भारत ने अनेक संत-महात्मा उत्पन्न किये, किन्तु उन सब ने व्यक्तिगत मोक्ष का ही सन्देश दिया था। स्वामी विवेकानन्द पहले संन्यासी थे जिन्होंने धर्म को जीवन से जोड़ा, समाज और राष्ट्र से जोड़ा। उन्होंने धर्म को पहाड़ और कंदराओं से उतारकर हमारे रोज के जीवन में ढालने का वंदनीय कार्य किया। अब तक के हमारे शास्त्र बताते थे कि प्रत्येक जीव ब्रह्म है, वही ब्रह्म स्त्री है वही पुरुष है, वही युवक-युवती है और लाठी टेककर चलने वाला वृद्ध भी वही है; किन्तु व्यावहारिक जीवन में हम कहा करते थे— 'दूरं अप्सर रे चाण्डाल'—अरे चाण्डाल दूर हट। स्वामीजी ने कहा—"असल में प्रतिदिन के व्यावहारिक जीवन में शुद्धाद्वैत की सत्यता को प्रमाणित करना होगा। श्री शंकर इस अद्वैत वाद को जंगलों और पहाड़ों में रख गये हैं, मैं अब इसे वहाँ से लाकर संसार और समाज में प्रचारित करने आया हूँ।" उन्होंने पहली बार घोषणा की 'जो मन्दिर में शिव की उपासना करते हैं उनकी पूजा प्रारम्भिक है और जो जीव को शिव मानकर उनकी पूजा करते हैं उनसे शिव अधिक प्रसन्न होते हैं क्योंकि यही असली पूजा है। यही सच्ची उपासना का सार है।'

स्वामी विवेकानन्द ने एक परिव्राजक के रूप में सारे भारत की यात्रा कर देश की जनता की दुरवस्था को देखा था और उनका हृदय करुणा से फट पड़ा था। उन्हें लगा था कि जब तक गरीबों की अवस्था में सुधार नहीं होता, भारत के नव-निर्माण की आशा नहीं की जा सकती। नव-निर्माण क्यों? इसलिए कि भारत तो सनातन है पर इसके ऊपर जो रूढ़ियों की काई जम गयी है उसे जब तक मिटाया नहीं जाता तब तक भारत अपने वास्तविक रूप में नहीं प्रतिष्ठित हो सकेगा। और भारत का प्राण धर्म है। धर्म की पुनर्प्रतिष्ठा से ही भारत का नव-निर्माण हो सकेगा। उन्होंने घोषणा की—'प्रत्येक राष्ट्र की एक विशिष्टता होती है, अन्य सब बातें उनके बाद आती हैं। भारत की विशिष्टता धर्म है। 'देश का प्राण धर्म है, भाषा धर्म है तथा भाव धर्म है। तुम्हारी राजनीति, समाजनीति, रास्ते की सफाई, दुर्भिक्ष पीड़ितों को अन्नदान आदि आदि चिरकाल से इस देश में जैसे हुआ है, वैसे ही होगा अर्थात् धर्म के द्वारा यदि होगा तो होगा अन्यथा नहीं। अतः यदि तुम धर्म का परित्याग करने की चेष्टा में सफल हो जाओ और राजनीति, समाज नीति या किसी दूसरी चीज को अपनी जीवन शक्ति का केन्द्र बनाओ, तो उसका फल यह होगा कि तुम एक बारगी नष्ट हो जाओगे।"

स्वामीजी ने देश के पतन के कारण पर चिन्तन किया और कहा - 'मैं समझता हूँ कि हमारा सब से बड़ा राष्ट्रीय पाप जन समुदाय की उपेक्षा है, और वह भी हमारे पतन का कारण है। भारत में दो बड़ी बुरी बातें हैं।

स्त्रियों का तिरस्कार और गरीबों को जाति-भेद द्वारा पीसना।' निम्न जाति के लोगों पर हो रहे अत्याचारसे क्षुब्ध होकर उन्होंने मर्मान्तिक स्वर से कहा 'पृथ्वी पर ऐसा कोई धर्म नहीं है, जो हिन्दू धर्म के समान इतने उच्च स्वर से मानवता के गौरव का उपदेश करता हो, और पृथ्वी पर ऐसा कोई धर्म नहीं है, जो हिन्दू धर्म के समान गरीबों और नीच जातिवालों का गला ऐसी क्रूरता से घोंटता हो। क्या हम मनुष्य हैं ? हे भगवान, कब एक मनुष्य दूसरे से भाई चारे का वर्ताव करना सीखेंगे ?

तो फिर भारत के नव-निर्माण का उपाय क्या है ? स्वामीजी ने इस पर गहराई से चिन्तन किया और कहा—'हमने राष्ट्र की हैसियत से अपना व्यक्तिभाव खो दिया है। हमें राष्ट्र को उसके खोये व्यक्तित्व को वापस लाना है और जन समुदाय को उठाना है। भारत को उठाना होगा, गरीबों को भोजन देना होगा, शिक्षा का विस्तार करना होगा और पुरोहित-प्रपंच की बुराइयों का निराकरण करना होगा।''''धर्म की बात सुनाना हो तो पहले इस देश के लोगों के पेट की चिंता को दूर करना होगा। पहले रोटी और तब धर्म चाहिए। गरीब बेचारे भूखों मर रहे हैं और हम उन्हें आवश्यकता से अधिक धर्मोपदेश दे रहे हैं।''

लेकिन प्रश्न यह है कि हम भारत का पुनर्निर्माण कैसे कर सकते हैं ? स्वामी जी ने हमें बताया कि चरित्र, सेवा, त्याग और प्रेम के द्वारा ही हम भारत का अभ्युत्थान कर सकते हैं। जब स्वामी विवेकानन्द अमेरिका से लौटे, तो कई लोगों ने उनसे कहा कि वे भारत की पराधीनता को दूर कर दें। उत्तर देते हुए स्वामीजी ने कहा,—'ठीक है, मान लो कि मैं कल भारत को स्वतंत्र कर देता हूँ, तो क्या तुम उस स्वतंत्रता की रक्षा कर सकोगे ? सारे देश में ऐसे लोग कहाँ हैं जो ऐसा कर सकें।'' इस प्रकार स्वामीजी ने हमें बता दिया कि जब तक हमारे पास चरित्रवान मनुष्य नहीं होंगे तब तक कुछ न किया जा सकता है, न पाया जा सकता है। आज हमारे देश में जो मूल्यों में गिरावट आयी है, चारों ओर आपाधापी है- लूट-खसोट, हिंसा है उसका कारण यही है कि हमारे पास चरित्रवान मनुष्य नहीं हैं। तो फिर हमें मनुष्य कैसे मिले ? यह कार्य संसद के कानून बनाने से नहीं हो सकता। केवल धर्म के माध्यम से ही मनुष्य का निर्माण हो सकता है। इसी से स्वामीजी कहते हैं—'भारत के नव-निर्माण के लिए तुम्हें धर्म और कर्म का सहारा लेना ही होगा। धर्म की सहायता के बिना भारत का उत्थान नहीं हो सकता।'

स्वामीजी ने देश के नव निर्माण के लिए सेवा का आदर्श प्रस्तुत किया। उन्होंने कहा, 'यदि तुम मेरी बात सुनो, तो तुम्हें अब पहले अपनी कोठरी का दरवाजा खुला रखना होगा।। तुम्हारे घर के पास, बस्ती के पास जितने आभाव ग्रस्त लोग रहते, हैं उनकी तुम्हें यथार्थ सेवा करनी होगी। जो पीड़ित है उसके लिए औषधि और पथ्य का प्रबंध करो, जो भूखा है उसके लिए खाने का प्रबन्ध करो, जो अज्ञानी है, उसे वाणी द्वारा जहाँ तक हो सके समझाओ।' स्वामीजी का दृढ़ विश्वास था कि 'भारत तभी जगेगा जब विशाल हृदय वाले सैकड़ों स्त्री पुरुष भोग-विलास और सुख की सभी इच्छाओं को विसर्जितकर मन, वचन और शरीर से उन करोड़ों भारतीयों के लिए सचेष्ट होंगे जो दरिद्रता और मूर्खता के अगाध सागर में निरन्तर नीचे डूबते जा रहे हैं।''

यह सेवा अहंकार-भाव से नहीं, उपासना के भाव से होनी चाहिए। जीव को शिव मानकर उसकी सेवा होनी चाहिए। स्वामीजी की दृष्टि यह है कि जब आप ईश्वर के सर्वातीत पहलू पर ध्यान करते हैं, तो वह एक प्रकार की उपासना है और जब आप मानवता की सहायता के लिए आगे बढ़कर निःस्वार्थ भाव से उसकी सेवा करते हैं, तो वह उपासना का दूसरा प्रकार हो जाता है, क्योंकि जीव वस्तुतः शिव ही है। हम मन्दिरों में जाकर देवता की उपासना पाषाण मूर्ति में करते हैं, उसके लिए हमें प्राण प्रतिष्ठा करनी पड़ती है, जब कि मनुष्य में देवता

की प्राण-प्रतिष्ठा की आवश्यकता नहीं। वह तो चलता-फिरता मन्दिर है और उसमें देवता स्वंय होकर विराजित हो गये हैं। अतः ऐसे पीड़ित और असहाय मनुष्यों की विविध प्रकार से सेवा रूपी उपासना करने पर हमें ईश्वर का ही साक्षात्कार होगा। स्वामी विवेकानन्द इस सेवा मंत्र से इतने उद्भासित हो उठे थे कि वे कह उठे थे - लो, यह मार्ग है

भारत के नव निर्माण के लिए स्वामीजी को देश के युवकों से बड़ी अपेक्षाएँ थीं। उन्होंने कहा था—'मेरी आशा, मेरा विश्वास नवीन पीढ़ी के नवयुवकों पर है। उन्हीं में से मैं अपने कार्यकर्ताओं का संग्रह करूँगा। वे सिंह विक्रम से देश की यथार्थ उन्नति सम्बंधी सारी समस्या का समाधान करेंगे।' नवयुवकों से उन्होंने कहा था— ऐ 'वीर, साहस का अवलम्बन करो, गर्व से कहो कि मैं भारतवासी हूँ और प्रत्येक भारतवासी मेरा भाई है। तुम चिल्लाकर कहो कि आज्ञानी भारतवासी, दरिद्र भारतवासी, ब्राह्मण भारतवासी, चाण्डाल भारतवासी सब मेरे भाई हैं····भारतवासी मेरे प्राण हैं, भारत की देव-देवियाँ मेरे ईश्वर हैं, भारत का समाज मेरे बचपन का झूला, मेरी जवानी की फुलवारी और मेरे बुढ़ापे की काशी है।' और एक नये भारत की कल्पना करते हुए स्वामीजी ने कहा था – 'एक नवीन भारत निकल पड़े। निकले हल पकड़कर, किसानों की कुटी भेदकर, मछुआ, माली, मोची, मेहतरों की झोपड़ियों से। निकल पड़े बनियों की दुकानों से, भुजवा के भाड़ के पास से, कारखाने से, हाट से बाजार से! निकले झाड़ियों, जंगलों, पहाड़ों, पर्वतों से!···'

स्वामी विवेकानन्द ने हमें सिखाया है कि भारत का नव-निर्माण हम भारत के प्रति अगाध प्रेम रख कर ही कर सकते हैं। जिस किसी ने स्वामीजी के अग्नि वचनों को छुआ उसी में राष्ट्रीयता की लहर आयी है। इसी से महात्मा गाँधी ने कहा था—"मैंने स्वामीजी के ग्रन्थ बड़े ही मनोयोग के साथ पढ़े हैं और इसके फलस्वरूप देश के प्रति मेरा प्रेम हजारों गुना बढ़ गया है।" पंडित जवाहर लाल नेहरू का कथन है—"मुझे पता नहीं कि आज की युवा पीढ़ी में से कितने लोग स्वामी विवेकानन्द के लेख और व्याख्यान पढ़ते हैं, पर मेरी पीढ़ी के अनेक युवक उनसे अत्यधिक प्रभावित हुए थे और मेरा विचार है कि वर्तमान पीढ़ी भी यदि स्वामीजी के व्याख्यान और उनकी रचनाओं का अनुशीलन करे तो उसका बड़ा उपकार होगा।" भारत के पुर्ननिर्माण में स्वामीजी के अवदान की चर्चा करते हुए राष्ट्रकवि दिनकर ने लिखा है-"स्वामी विवेकानन्द जिस स्वप्न के कवि थे, महात्मा गाँधी और जवाहर लाल नेहरू बाद में चलकर उसी के इंजीनियर हुए।" और रूस के विद्वान प्रोफेसर ई० पी० चेलीशेव ने स्वामी विवेकानन्द का मूल्यांकन करते हुए कितना ठीक लिखा है कि "भारत एवं विश्व के विगत काल के लिए स्वामी विवेकानन्द का सन्देश उपयोगी था, परन्तु वर्तमान भारत और विश्व के सन्दर्भ में उसकी प्रासंगिता और भी बढ़ गयी है। यही कारण है कि रूस के अनेक शोध कर्ता एवं विचारक आज श्रीरामकृष्ण और विशेषकर स्वामी विवेकानन्द पर अध्ययन कार्य में लगे हुए हैं।"

मेरा यह दृढ़ विश्वास हैं कि भारत के नव निर्माण के लिए स्वामीजी के अग्नि-अभिषिक्त इस मंत्र को भारतवासी सदैव याद रखेंगे—'उठो, जागो और लक्ष्य प्राप्त किये बिना विश्राम मत लो'। स्वामीजी से मेरी प्रार्थना है कि वे हममें त्याग, सेवा का भाव भरकर देश के नव-निर्माण की प्रेरणा दें।

जय श्रीरामकृष्ण ! जय माँ ! जय स्वामीजी !

मनीषियों की दृष्टि में स्वामी विवेकानन्द

संकलन एवं अनुवादक—स्वामी विदेहात्मानन्द
रामकृष्ण मठ, नागपुर

चक्रवर्ती राजगोपालाचारी

अपने आधुनिक इतिहास पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट रूप से प्रतिभात हो उठता है कि हम विवेकानन्द के कितने ऋणी हैं। उन्होंने भारत के आत्मगौरव की ओर भारत के नेत्र खोल दिये। उन्होंने राजनीति के लिए अध्यात्म की आधार शिला रखी। हम अन्धे थे, उन्होंने हमें दृष्टि प्रदान की। वे ही भारतीय स्वाधीनता के जनक हैं; हमारे राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक स्वाधीनता के पिता हैं।

स्वामी विवेकानन्द ने हिन्दू धर्म को बचाया और इस प्रकार भारत की रक्षा की। वे न होते तो हम अपना धर्म गँवा बैठते और स्वाधीन भी नहीं हो पाते। अतएव सभी बातों के लिए हम स्वामी विवेकानन्द के ऋणी हैं। मेरी कामना है कि उनका विश्वास, उनका साहस और उनका विवेक हमें सदा-सर्वदा प्रेरित करता रहे, ताकि उनसे मिली सम्पदा को हम सुरक्षित रख सकें।

महात्मा गांधी

मैं यहाँ (बेलुड़ मठ में) स्वामी विवेकानन्द के जन्म दिवस पर उनकी पुण्यस्मृति में श्रद्धांजलि अर्पित करने आया हूँ। मैंने स्वामीजी के ग्रन्थ बड़े ही मनोयोग के साथ पढ़े हैं और इसके फलस्वरूप देश के प्रति मेरा प्रेम हजारोंगुना बढ़ गया है। युवकों से मेरा अनुरोध है कि स्वामी विवेकानन्द ने जहाँ निवास और देहत्याग किया, वहाँ से कुछ प्रेरणा लिए बिना, खाली हाथ न लौटें।

श्री अरविन्द

यदि दुनिया में कोई सामर्थ्यवान पुरुष हुआ है तो वे थे स्वामी विवेकानन्द। मनुष्यों के बीच वे एक साक्षात् सिंह थे। उनकी सर्जनात्मक प्रतिभा और क्षमता के बारे में हमारे मन में जो धारणा है, उसकी तुलना में, अपने पीछे वे जो एक सुनिश्चित कार्य छोड़ गये हैं, वह बिल्कुल अपर्याप्त है। उनके प्रभाव को हम आज भी व्यापक स्तर पर क्रियाशील अनुभव करते हैं। हमें ठीक मालूम नहीं कि किसप्रकार और कहाँ, किसी ऐसी चीज में जिसे अभी तक पूरा आकार नहीं मिला है; कुछ सिंहसदृश, महान् अन्तः प्रेरक उन्नायक वस्तु भारत की अन्तरात्मा में प्रविष्ट हो गयी है और हम कहते हैं, 'वह देखो! विवेकानन्द अब भी अपनी माता और उनकी सन्तानों की आत्मा में जीवित हैं।'

गुरु द्वारा निर्दिष्ट होकर, एक वीर पुरुष की भाँति, पूरे जगत को अपने दोनों हाथों में लेकर बदल डालने के सुनिश्चित उद्देश्य के साथ विवेकानन्द का बाहर जाना विश्व के समक्ष पहला संकेत था कि भारत न केवल आत्मरक्षा के लिए अपितु विजय करने को जागा है।

उनका एक एक कार्य, उनकी वाणी या लेखनी से प्रस्फुटित एक-एक शब्द, भारतीय राष्ट्रीयता की परिकल्पना से लिपटे हुए भ्रमों, मिथ्या धारणाओं, मरीचिकाओं, अन्धानुकरणों तथा निराशाओं के लिए अग्निबाण था।

राष्ट्रीयता को युग धर्म के रूप में स्वीकार करना और राष्ट्रशक्ति को जगाने में जीवन का क्षण-क्षण लगाना ही उन 'मनुष्यों के बीच साक्षात् सिंह' का सन्देश था।

लोकमान्य तिलक

ऐसा शायद ही कोई हिन्दू होगा, जो विवेकानन्द के नाम से परिचित न हो। उन्नीसवीं शताब्दी में भौतिकविज्ञान ने असाधारण प्रगति करके (विश्व में) अपने लिए उच्च स्थान बना लिया था। ऐसी शताब्दी के उत्तरार्ध में, हिन्दुस्तान में सहस्रों वर्ष पूर्व से प्रचलित अध्यात्मशास्त्र को पाश्चात्य विद्वानों के समक्ष समझाकर प्रस्तुत करना तथा उनसे उसको अपूर्वता की बात मनवाना और जिस राष्ट्र में उन शास्त्रों का सृजन हुआ उसके लोगों के बारे में सहानुभूति उत्पन्न कराना—यह कोई मामूली काम नहीं है। अंग्रेजी शिक्षा के साथ ही साथ पश्चिम की भौतिकता का प्रवाह भी भारत में इतनी तेजी के साथ बहा चला आ रहा था कि उसे वापस लौटाने के लिए एक असाधारण धैर्यशाली और बुद्धिमान पुरुष के आविर्भाव की आवश्यकता थी। स्वामी विवेकानन्द के पहले यह कार्य थियोसॉफिकल सोसायटी ने आरम्भ किया था, परन्तु इसमें कोई दो राय नहीं है कि उक्त उद्योग में सच्चे हिन्दुत्व का आनयन सर्वप्रथम स्वामीजी ने ही किया। विश्व के समस्त देशों में अद्वैतवाद की पताका फहराने का और सम्पूर्ण जग में हिन्दूधर्म अर्थात् हिन्दुओं का गौरव बढ़ाते हुए धर्म की स्थापना का कार्य स्वामी विवेकानन्द ने अपने हाथ में ले लिया था। उन्होंने अपनी विद्वत्ता, वाग्मिता, उत्साह और आत्मविश्वास के द्वारा इस कार्य की आधारशिला दृढ़ भूमि पर रखी। हिन्दूधर्म का उज्ज्वल स्वरूप कौन सा है? हमारे देश में विकसित हुआ हमारा धर्म ही, हमारा अमोल धन और बल है; जग भर में इसका प्रचार करना ही हमारा सच्चा कर्तव्य है—ऐसा केवल मुख से न कहकर सारी दुनिया के समक्ष सिद्ध कर दिखानेवाले सत्पुरुष एक तो हजार-बारह सौ वर्ष पूर्व शंकराचार्य हुए थे और दूसरे उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में स्वामी विवेकानन्द हुए।

पं० जवाहरलाल नेहरू

प्राचीन भारत में पगे और भारतीय परम्परा के गर्व से परिपूर्ण विवेकानन्द का जीवन की समस्याओं के प्रति दृष्टिकोण अत्याधुनिक था। प्राचीन और वर्तमान भारत के बीच वे एक सेतु के समान थे।.... उनका व्यक्तित्व प्रभावशाली था, गम्भीरता और आत्मसम्मान उनमें भरा हुआ था, अपने तथा अपने कार्य के प्रति उनमें श्रद्धा थी और साथ ही वे क्रियाशीलता और अदम्य शक्ति से ओत प्रोत थे। भारत को आगे बढ़ाने की उनमें तीव्र उत्कण्ठा थी। हताश और निरुत्साहित हिन्दू मानस के लिए वे एक संजीवनी औषधि के रूप में आये। उन्होंने हमें आत्म विश्वास प्रदान किया और प्राचीन धारा से जुड़ने के कुछ सूत्र दिये।

मुझे पता नहीं कि आज की युवा पीढ़ी में से कितने लोग स्वामी विवेकानन्द के लेख और व्याख्यान पढ़ते हैं, पर मैं अपने काल की बात कह सकता हूँ। मेरी पीढ़ी के अनेक युवक उनसे अत्यधिक प्रभावित हुए थे और मेरा विचार है कि वर्तमान पीढ़ी भी यदि स्वामीजी के व्याख्यान और उनकी रचनाओं का अनुशीलन करे तो उसका बड़ा उपकार होगा, वे काफी कुछ सीख सकेंगे। स्वामीजी की वाणी थोथे शब्द मात्र न थे, बल्कि उनमें उनके मन-प्राण में प्रज्ज्वलित होने वाली उस अग्नि की झलक मिल जाती है, उनकी वाग्मिता और जीवनदायी भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त होने वाली उस ज्वाला के दर्शन होते हैं, जिसने अत्यल्प आयु में ही उन्हें स्वाहा कर दिया था।

अपने मुख से उच्चरित होने वाले शब्दों में उन्होंने अपनी अन्तरात्मा उड़ेल दी और इसी कारण वे एक महान वक्ता हो गये थे। उन्होंने वाक्चातुर्य की चमक-दमक तथा अलंकरण का नहीं बल्कि गहन श्रद्धा और आत्म में आस्था का आश्रय लिया था, इसीलिए भारत में बहुसंख्य लोगों पर उन्होंने काफी गहरा प्रभाव डाला और इसमें सन्देह नहीं कि युवक और युवतियों की दो-तीन पीढ़ियाँ उनसे प्रभावित होती रही हैं।

जिन लोगों ने (नव) भारत के प्रारम्भिक और कठिनाई के दिनों में आकर पहले से ही इसे तैयार किया और आकार दिया, तब से ऐसा काफी कुछ घटा है जिसके कारण सम्भवत: कुछ लोग उन्हें भूल जाते हैं। यदि आप स्वामी विवेकानन्द की रचनाएं और व्याख्यान पढ़ें तो उनमें आप एक अद्भुत बात लक्ष्य करेंगे कि वे कभी पुरानी नहीं प्रतीत होतीं। ये बातें ५६ वर्ष (अब लगभग ६५ वर्ष) पूर्व कही गयी थीं, पर आज भी वैसी ही तरोताजा हैं, क्योंकि उन्होंने जो कुछ भी लिखा या कहा वह हमारी अथवा विश्व समस्याओं के मूलभूत तत्वों तथा पहलुओं से सम्बन्धित था। यही कारण है कि वे पुराने नहीं लगते। आज भी यदि आप उन्हें पढ़ें तो वे नये ही लगेंगे।

उन्होंने ऐसा कुछ दिया, जो हमें अपनी विरासत के प्रति एक तरह का गर्व प्रदान करता है। पर उन्होंने हमें बख्शा नहीं; उन्होंने हमारे दोषों और असफलताओं के बारे में भी जानकारी दी। उन्हें कुछ भी छिपा रखने की इच्छा न थी और वस्तुत: उनके लिए ऐसा करना उचित भी नहीं था, क्योंकि हमें उन दोषों को दूर करने की ओर इंगित भी किया। कभी-कभी वे हमारे ऊपर कठोर आघात करते हैं, पर कभी-कभी वे भारत के उन महान् तत्त्वों का भी बोध कराते हैं, जो भारत का वैशिष्ट्य रहे हैं और जिन्होंने हमारे दुर्दिनों में भी हमारी महानता को कुछ हद तक बरकरार रखा है।

अत: स्वामी ने जो कुछ भी लिखा या कहा है, वह हमारे हित में है और होना भी चाहिए तथा वह आने वाले लम्बे अरसे तक हमें प्रभावित करता रहेगा। वे साधारण अर्थ में कोई राजनीतिज्ञ नहीं थे, फिर भी, मेरी राय में, वे भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के महान् संस्थापकों में से एक थे, और आगे चलकर जिन लोगों ने उस आन्दोलन में थोड़ा या अधिक सक्रिय भाग लिया, उनमें से अनेक के प्रेरणा स्रोत स्वामी विवेकानन्द थे। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उन्होंने वर्तमान भारत को सशक्त रूप से प्रभावित किया था और मेरा विश्वास है कि हमारी युवा पीढ़ी स्वामी विवेकानन्द के अन्तर से प्रवहमान ज्ञान, प्रेरणा और उत्साह के स्रोत से लाभ उठाएगी।

ई० पी० चेलीशेव

विवेकानन्द के ग्रन्थों का बारम्बार पठन करने पर, हर बार मुझे उसमें ऐसी कुछ नयी बात मिल जाती है, जिससे मुझे प्राचीन और अर्वाचीन भारत, उसके दर्शन, उसकी जीवनपद्धति और वहाँ के लोगों के रीति-रिवाज एवं भावी आकांक्षाओं को और भी गहराई से समझने में सहायता मिलती है। विवेकानन्द के सन्देश में भारतीय संस्कृति के सर्वश्रेष्ठ तत्वों के साथ समन्वित होकर मानवतावाद के उदात्त आदर्शों का विकास हुआ है और मुझे लगता है कि यही उनकी महानतम देन है।

समकालीन भारतीय साहित्य का अध्ययन करते समय कई बार मैंने पाया है कि विवेकानन्द के मानवतावादी आदर्शों ने अनेक लेखकों की कृतियों पर अत्यधिक प्रभाव विस्तार किया है। मेरी राय में, मनुष्य को पौरुषहीन मानकर ईश्वर से कृपायाचना करने वाले ईसाई आदर्श के साथ

विवेकानन्द के मानवतावाद का बिल्कुल भी साम्य नहीं है। धार्मिक आदर्शों को उन्होंने राष्ट्रीय हितों की रक्षा और अपने गुलाम देशवासियों की मुक्ति के काम में लगाने का प्रयास किया था। विवेकानन्द ने लिखा है कि साम्राज्यवादी लोग भारत में एक पर एक चर्च बनवाते जा रहे हैं, जबकि प्राच्य देशों में धर्म की नहीं रोटी की जरूरत है; मैं सभी लोगों को अन्धविश्वासी मूर्ख की अपेक्षा सच्चा नास्तिक देखना कहीं अधिक पसन्द करूंगा। मनुष्य को ऊपर उठाने के लिए विवेकानन्द उन्हें ईश्वर से एकीभूत कर देते हैं।...

यद्यपि हम विवेकानन्द कथित मानवतावाद के आदर्शवादी आधार से सहमत नहीं हैं, तथापि हम स्वीकार करते हैं कि इसमें सक्रिय मानवतावाद के अनेक तत्व विद्यमान हैं, जो सर्वोपरि – मनुष्य को ऊपर उठाने की उनकी अदम्य आकांक्षा, उसमें आत्मगौरव का भाव लाना, अपने तथा सबके भाग्य के बारे में उत्तरदायित्व महसूस कराना, अपने भले सच्चे तथा न्यायपूर्ण आदर्शों के लिए प्रयासी बनाना, किसी भी प्रकार के कष्ट के प्रति घृणा का भाव जगाना आदि रूपों में अभिव्यक्त हुए हैं।....

अनेक वर्ष बीत जाएंगे, पीढ़ियाँ आएंगी और चली जाएंगी, विवेकानन्द और उनका काल सुदूर अतीत की वस्तु हो जाएंगे; परन्तु उनकी याद कभी धुंधली नहीं होगी, जो अपने जीवन भर अपने देशवासियों के लिए बेहतर भविष्य का स्वप्न देखते रहे, जिन्होंने भारतवासियों को जगाने एवं भारत की प्रगति का पथ प्रशस्त करने के लिए इतना कुछ किया और अपने अतिपीड़ित लोगों को अन्याय एवं अत्याचार से बचाने के लिए संघर्ष करते रहे। जिस प्रकार एक खड़ी चट्टान एक सागरतरीय घाटी को तूफान, हवा के तेज झोंकों, ऊँची लहरों और बुरे मौसम से रक्षा करती है, उसी प्रकार विवेकानन्द भी साहस एवं निःस्वार्थ भाव से अपनी मातृभूमि के शत्रुओं के साथ जूझते रहे।

हमारे देश सोवियत रूस में स्वामी विवेकानन्द का नाम बड़ा ही लोकप्रिय और सम्माननीय है। सोवियत जनता उनका एक महान् लोकतान्त्रिक, मानवतावादी और देशभक्त के रूप में आदर करती है, जिन्होंने भारत में राष्ट्रीय चेतना और साम्राज्यवाद-विरोधी स्वाधीनता आन्दोलन के विकास में विराट् योगदान किया। वे ऐसा भी सोचते हैं कि मानव सभ्यता पर आज जो विध्वंशकारी अणुयुद्ध से खतरे के बादल छाये हुए हैं, उनसे जीवन रक्षा के लिए भी उनका तथा श्रीरामकृष्ण का सन्देश जो वस्तुतः एक ही हैं की अतीव आवश्यकता है। हमारा विश्वास है कि उन्हीं का सन्देश आज के त्रासदीयुक्त जगत् में शान्ति, समन्वय और समझ का विस्तार कर सकता है। वे लोग केवल धर्मनायक नहीं हैं, अपितु उससे बहुत अधिक हैं। वे शान्ति, समन्वय एवं विश्वबन्धुत्व के मसीहा हैं। भारत एवं विश्व के विगत काल के लिए उनका सन्देश उपयोगी था, परन्तु वर्तमान भारत और समकालीन विश्व के सन्दर्भ में उसकी प्रासंगिकता और भी बढ़ गयी है। यही कारण है कि रूस के अनेक शोधकर्ता एवं विचारक आज श्रीरामकृष्ण और विशेषकर स्वामी विवेकानन्द पर अध्ययन-कार्य में लगे हुए हैं।

हुआंग जिन चुआन

आज के चीन में विवेकानन्द ही भारत के सबसे प्रसिद्ध दार्शनिक एवं समाजसेवी माने जाते हैं। उनकी दार्शनिक एवं सामाजिक चिन्तनराशि एवं उद्दाम देशप्रेम ने, न केवल स्वदेश में राष्ट्रवादी आन्दोलन के विकास की प्रेरणा दी अपितु विदेशों में महान प्रभाव विस्तार किया। १८९३ ई० में स्वामीजी ने कैंटन और उसके आसपास के क्षेत्रों

का परिदर्शन किया। उन्होंने मद्रासवासियों के नाम अपने एक पत्र में इस भ्रमण का विवरण दिया है। उन्हें चीन के इतिहास के बारे में थोड़ी बहुत जानकारी और समझ भी थी। अपने लेखों एव व्याख्यानों में उन्होंने बहुधा चीन के बारे में उच्च भाव व्यक्त किये हैं। उन्होंने एक भविष्यवाणी भी की थी कि एक दिन निश्चित रूप से चीनी संस्कृति 'फोनिक्स पक्षी' की भाँति पुनर्जीवित होगी और प्राच्य व पाश्चात्य संस्कृतियों के समन्वय का महान उत्तरदायित्व ग्रहण करेगी। उनके जीवनीकार रोमाँ रोलाँ ने इस विषय में उनके विचारों के विकास का विवरण भी दिया है। विवेकानन्द जब पहली वार अमेरिका गये तो उन्हें आशा थी कि वह राष्ट्र मेरे लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक होगा। परन्तु अपनी द्वितीय पाश्चात्य यात्रा के दौरान उन्हें बोध हुआ कि वे डालरीय-साम्राज्यवाद के भुलावे में आ गये थे। अत: वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि अमेरिका नहीं, बल्कि चीन ही मेरे इस कार्य के सम्पादन में यंत्र स्वरूप हो सकता है।

सामंतवाद एवं साम्राज्यवाद की त्रासदी के बीच जी रहे चीनी लोगों के बारे में विवेकानन्द के मन में असीम सहानुभूति का भाव था। अपनी चीन यात्रा के पश्चात् उन्होंने एक बड़ी रोचक टिप्पणी की। उन्होंने लिखा—"चीनी बच्चों को पूरा दार्शनिक ही समझो। जिस उम्र में भारतीय बच्चे घुटनों के बल भी नहीं चल पाते, उस उम्र में वह स्थिर भाव से चुपचाप काम पर जाता है। आवश्यकता का दर्शन उसने अच्छी तरह सीख और समझ लिया है।" इस उक्ति से यह स्पष्ट हो जाता है कि उस काल के चीनी शिशुओं के कष्ट के प्रति विवेकानन्द के हृदय में कितनी सहानुभूति का भाव था।

अपनी कल्पना के समाजवाद की व्याख्या करते हुए विवेकानन्द ने एक उपयोगी सिद्धान्त प्रस्तुत किया है। उन्होंने कहा कि भावी समाज श्रमिकवर्ग द्वारा शासित होगा और यह घटना पहले चीन में होगी। अपनी 'वर्तमान भारत' पुस्तक में वे कहते हैं—'परन्तु फिर भी आशा है। काल के प्रभाव से ब्राह्मण आदि वर्ण भी शूद्रों का नीच स्थान प्राप्त कर रहे हैं और शूद्र जाति ऊँचा स्थान पा रही है।....महाबलवान चीन हम लोगों के सामने ही बड़ी शीघ्रता से शूद्रत्व प्राप्त कर रहा है।....तो भी एक ऐसा समय आयेगा, जब शूद्रत्वसहित शूद्रों का प्राधान्य होगा,...एक समय आएगा जब प्रत्येक देश के शूद्र अपने-अपने समाज का पूर्ण आधिपत्य करेंगे।.... समाजवाद, अराजकतावाद, नाशवाद आदि सम्प्रदाय आने वाले सामाजिक विप्लव की ध्वजाएँ हैं।' ..

निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि विवेकानन्द भारत के लोकतंत्रवादी देशभक्तों में सर्वप्रमुख थे। उन्होंने हमारी प्राचीन गरिमामय संस्कृति के प्रति अतीव सम्मान का भाव व्यक्त किया और चीन के पीड़ाग्रस्त लोगों से उन्हें प्रेम था।

हम उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

स्वामी विवेकानन्द के सेवायोग का मूल स्रोत

— स्वामी अशोकानन्द
भूतपूर्व अध्यक्ष
वेदान्त सोसाइटी ऑफ नॉर्दर्न कैलिफोर्निया
सैन फ्रांसिस्को, अमेरिका

हमारे विवेचन का विषय सेवा का स्रोत नहीं, बल्कि सेवा का सिद्धान्त (Doctrine of Service) अथवा सेवायोग है। ये दोनों विषय एक दूसरे से पूर्णतया पृथक् हैं। हृदय की परिपूर्णता, प्रेमातिरेक, सहानुभूति एवं दया से सेवा की उत्पत्ति होती है; ये ही इसके उद्भव स्थल हैं। स्वामी विवेकानन्द ने विश्व की जो सेवा की थी, उसकी उत्पत्ति मानव के दुःख-दर्दों के प्रति उनकी तीव्र संवेदना से ही हुई थी। इस मामले में, निश्चित रूप से, वे अपने गुरुदेव श्री रामकृष्ण देव के ही सदृश थे, क्योंकि रामकृष्णदेव भी दुःखी मानवता के प्रति उतने ही सहानुभूति-सम्पन्न थे। रामकृष्णदेव की सहानुभूति निश्चेष्ट नहीं थी, बल्कि अत्यन्त ही सक्रिय थी। ऐसे कई दृष्टान्त हैं जब उन्होंने दुर्भिक्ष-राहत कार्यों में आत्मनियोग किया था। अपने भक्त मथुरा मोहन विश्वास (रानी रासमणि के दामाद) को उन्होंने भुखमरों को खिलाने, उन्हें वस्त्र देने एवं एकबार तो विलम्बित लगान तक माफ कर देने के लिए राजी किया था। तथा एक महत्वपूर्ण बात यह भी है कि ऐसे देवमानवों का इस संसार में अवतरण मानवता के कल्याण हेतु ही होता है। श्री रामकृष्णदेव के कई अनुयायी उन्हें ईश्वरावतार मानते हैं। इसकी सम्भाव्यता के अतिरिक्त, इस मान्यता का कम से कम इतना अर्थ तो जरूर निकलता है कि श्री रामकृष्णदेव के कोई भी अनुयायी यह अस्वीकार नहीं करते हैं कि उनका जीवन मानवता की सहायता के लिए पूर्णतया समर्पित था, क्योंकि परम्परागत रूप से मानव का कल्याण करना ही ईश्वरावतार का मुख्य उद्देश्य माना जाता है। अतएव, स्वामी विवेकानन्द की सेवा की उत्पत्ति का विवेचन करना अनावश्यक है।

परन्तु, सेवायोग पर आते ही आपत्तियाँ उठने लगती है। सेवायोग का अर्थ होता है कि भक्ति, ज्ञान तथा योगादि की तरह यह भी आत्मानुभूति प्राप्त करने का एक प्रभावशाली मार्ग है। निःसन्देह, सेवायोग वर्तमान युग की देन नहीं है। भारत में कर्मयोग के नाम से यह बहुत पहले से ही ज्ञात है। लेकिन यह बात सही है कि स्वामी विवेकानन्द ने अपने उपदेशों में इसपर विशेष बल दिया है। रामकृष्ण संघ, भारत एवं विश्व को दी गयी उनकी कर्मनीति में तथा अनुगामियों के प्रशिक्षण हेतु उनके द्वारा निश्चित किये गये आध्यात्मिक अनुशासनों में सेवायोग शीर्षस्थानीय है। इसे वे आवश्यक तथा वर्तमान युग के लिए विशेष उपयुक्त समझते थे। जब स्वामी विवेकानन्द पाश्चात्य देशों से लौटे, तो कई युवकों ने रामकृष्ण संघ में प्रवेश लिया था। उनमें से एक युवक (जो स्वामीजी के शिष्य थे) कर्मयोग को स्वामीजी का विशेष संदेश कहकर प्रचार करते थे। परन्तु, स्वामीजी के अन्य शिष्यगण उसे सही नहीं मानते थे। वे सोचते थे कि ज्ञान, भक्ति आदि ही स्वामीजी को विशेष अभीष्ट है। अंत में, स्पष्टीकरण हेतु वे लोग स्वामीजी के पास गये। स्वामीजी ने भी स्वीकार किया कि कर्मयोग को वे

वर्तमान युग के लिए विशेष आवश्यक समझते हैं।

अब विचारणीय विषय यह है कि 'सेवायोग' श्री रामकृष्ण द्वारा समर्थित था या नहीं। क्या स्वामी विवेकानन्द ने सेवायोग के प्रवर्तन के लिए अपने गुरुदेव श्री रामकृष्णदेव से प्रेरणा प्राप्त की थी या अन्य स्रोतों से अथवा यह उनके अपने मन की उपज थी? श्री रामकृष्ण द्वारा समर्थित होने में सन्देह इस समस्या को और अधिक वास्तविक बना देता है। यह कहा जाता है कि अपने सम्पर्क में आने वालों में किसी को भी उन्होंने सेवा को आत्मानुभूति के साधन के रूप में ग्रहण करने को नहीं कहा था, बल्कि ऐसे कई उदाहरण हैं जब उन्होंने इसका खंडन ही किया था। यह तर्क देना पर्याप्त नहीं है कि स्वयं श्री रामकृष्ण के द्वारा किया गया सेवाकार्य तथा मानवता की सेवा के लिए अपने कुछ शिष्यों को उनके द्वारा दिया गया आदेश अपने आप में उनकेसमर्थन का प्रमाण है। हम यह जानते हैं कि श्री रामकृष्ण एवं उनके शिष्यों ने कर्मयोगेतर आध्यात्मिक साधनों द्वारा आत्मानुभूति प्राप्त की थी। आत्मानुभूति सम्पन्न लोग अपनी इच्छानुसार कुछ भी करने में स्वतंत्र होते हैं। नये साधकों को उनका अनुकरण नहीं करना चाहिए। प्रज्ञावान लोगों के लिए जो ठीक है वह अज्ञानियों के लिए ठीक नहीं भी हो सकता है। अतएव, श्री रामकृष्ण एवं उनके शिष्यों का दृष्टान्त-मात्र यह प्रमाणित नहीं करता कि श्री रामकृष्ण ने सेवायोग का उपदेश दिया था। हमें अन्य प्रमाण प्रस्तुत करने होंगे। यह सत्य है कि एक साधारण व्यक्ति के अन्दर भी थोड़ी बहुत सहानुभूति जरूर रहती है एवं उसके अनुसार वह सेवा भी कर सकता है। अतएव, इस दृष्टि से श्री रामकृष्ण एवं किसी नवसिखुआ (Novice) में प्रकारगत भेद नहीं, केवल मात्रागत भेद है। यदि श्री रामकृष्ण के लिए सहानुभूति ही सेवा का एकमात्र प्रेरक हो, तो नवसिखुआ के लिए भी वैसा ही होगा। परन्तु, क्या श्री रामकृष्ण एवं हमारी सहानुभूति में केवल मात्रागत भेद है? श्री रामकृष्णदेव दया-भावना की तीव्र भर्त्सना करते थे। उनका प्रत्येक कार्य प्रेम से प्रेरित होता था, दया से नहीं, यद्यपि बाह्य रूप से वह दया जैसा लगता था। जबतक हम मानव की दिव्यता की अनुभूति नहीं कर लेते, तबतक हम मानव के प्रति श्री रामकृष्ण देव का दृष्टिकोण नहीं अपना सकते। हम दीन दुखियों, आर्त-पीड़ितों को मुख्यतः मानव के रूप में ही देखते हैं, जबकि वे उन्हें प्रधानतः ईश्वर के रूप में देखते थे। मानवता के प्रति उनकी तथा हमारी सहानुभूति में केवल आभासी समानता है। इन जगत गुरुओं के उच्चासन का बड़ा ही सुन्दर वर्णन स्वामी विवेकानन्द ने निम्नलिखित शब्दों में किया है, "कई लोग मुक्त हो सकते हैं, परन्तु सभी आचार्य (जगत् गुरु) नहीं बन सकते। मुक्त पुरुष को जगत स्वप्नवत् मालूम होता है, परन्तु आचार्य को दो अवस्थाओं के बीच अपना स्थान रखना पड़ता है। उन्हें यह ज्ञान रहना चाहिए कि जगत सत्य है, अन्यथा वे उपदेश ही क्यों देंगे? फिर, यदि उन्होंने जगत की अनुभूति स्वप्नवत् न की हो, तो वे एक साधारण मनुष्य की अपेक्षा श्रेष्ठ नहीं हैं, फिर वे शिक्षा ही क्या देंगे?" अतएव श्री रामकृष्ण का दृष्टान्त इस बात का पर्याप्त प्रमाण नहीं है कि स्वामीजी का सेवायोग उनसे ही व्युत्पन्न है।

सेवायोग का, श्री रामकृष्ण के उपदेशों से भिन्न होने की आपत्ति कर्म के प्रकारगत भेद पर आधारित है। सभी कर्मों के विरुद्ध आपत्तियां नहीं उठायी जाती हैं। कर्म चार प्रकार के हो सकते हैं : (१) भौतिक सहायता करना : जैसे भोजन, वस्त्र, आवास, दवा-चिकित्सा, रुपया-पैसा इत्यादि; (२) जीवन रक्षा करना; (३) बौद्धिक ज्ञान

प्रदान करना; (४) आध्यात्मिक ज्ञान देना। सनातन हिन्दू धर्मानुसार प्रथम तीन प्रकार की सेवाएं गृहस्थों का विशेष धर्म है, जबकि अन्तिम कार्य संन्यासियों का है; संन्यासियों को प्रथम तीन प्रकार के कार्यों में संलग्न नहीं होना चाहिए। रामकृष्ण मिशन के साधुओं का लौकिक सेवाकार्यों में संलग्न होना, सनातनी संन्यासी के अनुसार संन्यास मार्ग का उल्लंघन है। इससे यह नहीं समझना चाहिए कि सनातनपंथी यह चाहते हैं कि संन्यासियों को पाषाण-हृदय होना चाहिए एवं उन्हें करुण क्रन्दनों से अप्रभावित रहना चाहिए। अगर किसी संन्यासी की भेंट एक भुखमरे से हो तथा साधन हो, तो उसकी सहायता जरूर करनी चाहिए या अगर कोई जीवन खतरे में हो तो उसकी रक्षा जरूर करनी चाहिए। ऐसे आकस्मिक सेवाकार्य तो उचित एवं आवश्यक हैं, परन्तु संन्यासियों को ऐसे सेवाकार्यों को अपना मुख्य कर्म बनाना मना है। उनका मुख्य कार्य केवल ध्यान-धारणा ही होना चाहिए। अनवरत ऐहिक सहायता करना गृहस्थों के ऊपर छोड़ देना चाहिए। फिर यह कहा जाता है कि जब किसी व्यक्ति के अन्दर, भले ही वह गृहस्थ हो, ईश्वरानुभूति की तीव्र इच्छा जागृत हो तो उसे सभी प्रकार के बाह्य क्रिया-कलापों को त्यागकर पूजा, जप, ध्यान आदि में पूरी तरह तल्लीन हो जाना चाहिए। सेवायोग के विरुद्ध आपत्ति उठायी जाती है कि यह ऐसे विशेष प्रकार के धर्मपरायण लोगों को ध्यान-धारणामय जीवन से दूर खींच ले जाता है। ऐसे लोगों के द्वारा धर्मप्रचार के विरुद्ध कोई आपत्ति नहीं उठायी जाती है; परन्तु उन उपदेशों का ऐहिक कार्यों में प्रयोग उनकी आध्यात्मिकता के लिए हानिकारक समझा जाता है।

स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रचारित सेवायोग के विरुद्ध उठायी जाने वाली दो मुख्य आपत्तियाँ हैं: (१) श्री रामकृष्णदेव के उपदेशों के द्वारा यह समर्थित नहीं हैं। (२) ऐहिक सेवा कार्यों में संलग्न होना, संन्यासियों एवं धार्मिकों का धर्म नहीं है। दूसरी आपत्ति ज्ञान एवं कर्म के बीच प्राचीन काल से चले आ रहे मतभेद मात्र हैं, जिनका खंडन भगवान श्री कृष्ण ने गीता में सदा के लिए कर दिया है। भले ही, यह समाधान अभी तक सर्वग्राह्य नहीं हो सका हो, जो होना चाहिए था। खैर, इसके खंडन की आवश्यकता यहाँ नहीं है। यहाँ प्रथम आरोप का खंडन करना ही हमारा मुख्य उद्देश्य है।

हम विगत घटनाओं का थोड़ा पुनरावलोकन करें। सेवायोग के संबंध में श्री रामकृष्णदेव का क्या मनोभाव था? इस संबंध में दो भिन्न विचार धाराएँ हैं। उनके कई शिष्यों के अनुसार उन्होंने कभी भी सेवायोग का उपदेश नहीं दिया, बल्कि ऐसे कई दृष्टान्त हैं, जब उन्होंने ऐसे सेवाकार्यों को करने से अनुत्साहित ही किया। क्रिष्टोदास पाल एवं शम्भु मल्लिक की बात सर्वविदित है। जब क्रिष्टोदास पाल ने अपना मत व्यक्त करते हुए कहा कि देशसेवा करना ही प्रधान कर्तव्य है तो, प्रत्युत्तर में श्री रामकृष्णदेव ने कहा, "एकमात्र ईश्वर ही संसार की देखरेख कर सकते हैं। मानव को पहले ईश्वरानुभूति प्राप्त करनी चाहिए, ईश्वरादेश एवं ईश्वरीय-शक्ति प्राप्त करनी चाहिए, तभी वह दूसरों की भलाई करने के बारे में सोच सकता है।" शम्भु मल्लिक ने जब चिकित्सालय आदि खोलने की अपनी इच्छा व्यक्त की तो, उन्होंने कहा, "अगर तुम्हारे समक्ष ईश्वर प्रकट हों तो, क्या तुम उनसे स्कूल, अस्पताल माँगोगे या भक्ति, ज्ञान आदि के लिए प्रार्थना करोगे? अतएव स्कूल, अस्पताल आदि की चिन्ता छोड़कर एकमात्र ईश्वर का चिन्तन करो।" ईश्वर चन्द्र विद्यासागर का भी उदाहरण है। श्री रामकृष्णदेव उनसे एकबार मिलने गये थे और वार्तालाप के

क्रम में उनसे कहा था, "तुम्हारे हृदय के अन्दर सोना है, लेकिन तुमको अभी तक इसको कोई खबर ही नहीं है; मानो वह मिट्टी से ढंका हुआ है। जब तुम इसका सन्धान पाओगे तब तुम्हारा कर्म धीरे-धीरे घट जायगा।" ईश्वर के अतिरिक्त अन्य किसी भी विषय के बारे में चिन्तन अथवा सम्भाषण करना श्री रामकृष्ण पसंद नहीं करते, भले ही वे विषय लोक कल्याण से ही संबंधित क्यों न हो। एक बार नरेन्द्र नाथ (स्वामीजी) एवं महेन्द्र नाथ गुप्त कलकत्ता के छात्रों के नैतिक पतन पर खेद प्रकट कर रहे थे। यह जानकर श्री रामकृष्ण ने उन्हें फटकार सुनायी और ईश्वर को छोड़कर अन्य किसी वस्तु का चिन्तन करने से मना किया। श्री रामकृष्ण ने यह स्वीकार किया था कि ईश्वर चन्द्र विद्यासागर का निष्काम कर्म चित्तशुद्धि का साधन है, परन्तु उन्होंने यह भी कहा कि जब उसके अन्दर ईश्वर के प्रति भक्ति जागरित होगी तो, उसके कर्म का अंत हो जायगा। यही बात उन्होंने स्वामी विवेकानन्द के भी संबंध में प्राकारान्तर से कही थी। काशीपुर उद्यान में स्वामी विवेकानन्द की निर्विकल्प समाधि के पश्चात उन्होंने भविष्यवाणी की थी, ज्योंही नरेन अपने आप को जान जायगा कि वह कौन है त्योंही वह अपना शरीर त्याग देगा। और ऐसा ही हुआ था। अंतिम दिनों में जब स्वामीजी के एक गुरुभाई ने उनसे पूछा कि क्या वे अपने आप को जान गये हैं तो, अप्रत्याशित एवं शांत उत्तर आया, "हाँ"। इसके बाद वे अधिक दिनों तक जीवित नहीं रहे। जीवन के शेष काल में किसी भी चीज के प्रति उनकी कोई रुचि नहीं थी, कर्म के प्रति भी नहीं, जो उन्हें अत्यन्त ही हृदय-प्रिय था। अंत में, श्री रामकृष्ण के जीवन एवं उपदेशों ने उनके शिष्यों पर जो प्रभाव डाला था, वह भी शुरु-शुरु में सेवायोग के पक्ष में नहीं लग रहा था। उनके कई गृही एवं संन्यासी शिष्य स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रस्तुत कर्म संबंधी विचारों एवं पद्धति को सन्देह की दृष्टि से देखते थे। ये विचार उन्हें अति क्रान्तिकारी मालूम होते एवं श्री रामकृष्ण के उपदेशों का जो तात्पर्य उनकी समझ में आया था उससे ये विचार मेल नहीं खा रहे थे। सभी विश्लेषण इस तथ्य को उजागर करते हैं कि श्री रामकृष्ण ने स्पष्ट रूप से सेवायोग का उपदेश अथवा समर्थन नहीं किया था।

परन्तु एक दूसरी भी विचारधारा है जिसके अनुसार सेवायोग श्री रामकृष्ण के व्यावहारिक जीवन एवं उपदेशों में सन्निहित है। प्रथमत:, श्री रामकृष्ण के द्वारा किये गये सेवाकार्यों के उदाहरण सर्वविदित हैं; जिनका हमने पहले ही उल्लेख किया है। वे अपने शिष्यों एवं भक्तों की केवल आध्यात्मिक उन्नति का ही ख्याल नहीं रखते, वरन् उनकी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति में भी सहायता किया करते। ये सभी दृष्टान्त उनके द्वारा आचरित सेवायोग की ओर संकेत करते हैं। साथ ही, वे दूसरों को भी वैसा ही करने को कहते। इससे संबंधित एक घटना का उल्लेख यहाँ किया जा सकता है। एकबार श्री रामकृष्ण को किसी ने कहा कि अमुक गाँव के लोग पेयजल के अभाव में बहुत कष्ट पा रहे हैं। इस पर उन्होंने मणिलाल मल्लिक नामक अपने एक भक्त से उस गाँव में एक तालाब खुदवाने का अनुरोध किया था। श्री रामकृष्ण की दो उक्तियाँ इन सब की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण हैं। वे प्राय: कहा करते, खाली पेट धर्म नहीं होता है। यदि यह बात सत्य है कि श्री रामकृष्ण का जीवनोद्देश्य संसार के अधिकतम लोगों को धर्म प्रदान करना था तो, जो उनके इस उद्देश्य में सहायक होना चाहते हैं, उनके लिए भूखों को भोजन देना, नंगों को वस्त्र देना, रोगियों की चिकित्सा करना अर्थात् लोगों की शारीरिक एवं बौद्धिक आवश्यकताओं की पूर्ति

करना अनिवार्य हो जाता है, ताकि लोग धर्म का महत्व समझने एवं उनका पालन करने की स्थिति में आ सकें। अपने गुरुभाइयों को संघबद्ध करने के लिए स्वामी विवेकानन्द द्वारा उन्हें लिखे गये पत्रों में श्री रामकृष्णदेव की इस उक्ति का बारम्बार प्रयोग किया गया है। इससे यह प्रमाणित होता है कि स्वामीजी इस तथ्य को सर्वाधिक महत्व देते थे। श्री रामकृष्णदेव की दूसरी उक्ति का सेवायोग के साथ सीधा संबंध है। हम इसकी चर्चा विस्तार से करेंगे। १८८४ ई० की घटना है। एक दिन श्री रामकृष्ण वैष्णव धर्म के तीन प्रधान सिद्धांतों की व्याख्या कर रहे थे—भगवन्नाम में रुचि, जीव के प्रति दया और वैष्णव पूजन। उन्होंने प्रथम सिद्धान्त की व्याख्या की, परन्तु दूसरे सिद्धान्त-सब जीवों पर दया-का उच्चारण करते ही वे समाधिस्थ हो गये। कुछ क्षणों के अनन्तर अर्धबाह्य दशा में अवस्थित होकर कहने लगे, "जीव पर दया, जीव पर दया? धत् तेरी, कीटाणु-कीट होकर तू जीव पर दया करेगा? दया करनेवाला तू कौन है? नहीं नहीं, जीव पर दया नहीं—शिवज्ञान से जीव की सेवा।" उस दिन श्रोताओं में स्वामी विवेकानन्द भी थे। कमरे से बाहर आकार वे कहने लगे, "आज ठाकुर की बात से कैसा अद्‌भुत प्रकाश दिखायी पड़ा! जिस वेदान्त-ज्ञान को लोग शुष्क, कठोर और ममतारहित समझते हैं, उसे भक्ति के साथ सम्मिलित करके कैसे सहज, सरस एवं मधुर प्रकाश का उन्होंने प्रदर्शन करा दिया! अद्वैत ज्ञान लाभ करने के लिए संसार और समाज त्यागकर वन में जाना होगा और भक्ति-प्रेम आदि कोमल भावों को हृदय से उखाड़ फेंककर सदैव के लिए चित्त को निःसंग रखना होगा— ऐसी बात ही तो अब तक सुनता आया हूँ। फलस्वरूप ऐसा ज्ञान प्राप्त करने के लिए संसार और उसके हरेक व्यक्ति को धर्ममार्ग का बाधक जानकर उस पर घृणा का भाव उत्पन्न होने से साधक के विपथ में भटक जाने की संभावना रहती है, किन्तु आज ठाकुर ने भावावेश में जैसा बताया, उससे जाना गया कि वन के वेदान्त को घर में लाया जा सकता है, संसार के सभी कार्यों में उसका प्रयोग किया जा सकता है। मनुष्य जो काम करते हैं, उसमें हानि नहीं, केवल हृदय से यह बात सबसे पहले समझ लेनी चाहिए कि ईश्वर ही जीव और जगत् के रूप में अपने सामने प्रकट होकर विराजमान हैं। जीवन के प्रतिक्षण वह जिनके सम्पर्क में आता है, जिन्हें प्यार करता है, जिन पर श्रद्धा, सम्मान या दया करता है, वे सभी उन्हीं के अंश हैं—वे स्वयं ही हैं। संसार के सभी व्यक्तियों को यदि वह शिवरूप समझ सके, तो अपने को बड़ा समझकर उनके प्रति द्वेष, क्रोध, दम्भ या दया करने का उसे अवसर कहाँ? इस रीति से सभी को शिव समझकर जीवों की सेवा करने से चित्त शुद्ध होकर थोड़े समय में अपने को चिदानन्दमय ईश्वर का अंश और शुद्ध-बुद्ध-मुक्त स्वभाव समझ सकेगा। ठाकुर के इस उपदेश से भक्ति पथ में भी विशेष प्रकाश दिखायी पड़ता है। जब तक ईश्वर को सर्वभूतों में नहीं देखा जाता, तब तक यथार्थ भक्ति या पराभक्ति लाभ करना साधक के लिए सम्भव नहीं होता। शिव या नारायण-ज्ञान से जीवों की सेवा करने से ईश्वर को सभी में व्याप्त देखकर, यथार्थ भक्ति लाभ करके भक्त-साधक अल्प काल में ही कृतार्थ हो सकेगा—इसमें कोई सन्देह नहीं। कर्मयोग या राजयोग के अवलम्बन से जो साधक अग्रसर हो रहे हैं, उन्हें भी इस बात से विशेष प्रकाश दिखायी पड़ेगा, क्योंकि कर्म न करके जब देही क्षण भर भी नहीं रह सकता तो शिवज्ञान से जीवसेवारूपी कर्मानुष्ठान ही कर्तव्य है और उसे करने की आवश्यकता नहीं। भगवान ने यदि अवसर दिया तो आज जो सुना, इस अद्‌भुत सत्य का संसार में सर्वत्र प्रचार करूँगा—पण्डित-मूर्ख,

धनी-निर्धन, ब्राह्मण-चाण्डाल, सभी को सुनाकर मुग्ध करूँगा।' यह मानना ही पड़ेगा कि यह घटना अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है और सेवायोग के मूल तत्त्व (Central truth) को प्रस्तुत करती है। साथ ही, हमें यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि यह घटना सर्वधर्मसमन्वय के भी मूल सिद्धांत (Underlynig principle) को निर्दिष्ट करती है; जैसी कि स्वामीजी ने व्याख्या की है—मानव को दिव्य रूप में देखना आवश्यक एवं आधार-स्वरूप है तथा सभी योगों का साधन सुसाध्य करता है। क्या यह सर्वधर्मसमन्वय के सिद्धांत के साथ सेवा-योग के आन्तरिक संबंध की ओर इंगित नहीं करता?

यदि इन दोनों विरोधी विचारों की आंशिक रूप से तुलना की जाय तो, प्रथम पक्ष का ही पलड़ा भारी पड़ेगा क्योंकि जहाँ तक स्पष्टोक्ति की बात है, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता है कि श्री रामकृष्ण ने स्पष्ट रूप से सेवायोग का उपदेश नहीं किया। सेवायोग के पक्ष में पूर्वोल्लेखित अप्रत्यक्ष प्रमाण विपरीत विचारों के बहुदृष्टान्तों के समक्ष अपना महत्व खो देता है। यह स्पष्ट रूप से व्यक्ति को इस निष्कर्ष तक पहुँचा देता है कि सेवायोग स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रवर्तित है। वस्तुतः, कई लोग ऐसा सोचते हैं। रामकृष्ण भावान्दोलन के अनुयायियों में भी ऐसे कई लोग हैं, जो मानते हैं कि श्री रामकृष्ण के द्वारा दिये गये सन्देशों में स्वामी विवेकानन्द ने बहु अंशदान किया है। अतएव, वे श्री रामकृष्ण एवं स्वामी विवेकानन्द को सम्मिलित रूप से इस भावान्दोलन के सृष्टिकर्ता मानते हैं। उनके अनुसार स्वामी विवेकानन्द श्री रामकृष्ण रूपी सत्य के सम्पूरक थे और पूर्ण सत्ता थे 'रामकृष्ण-विवेकानन्द।"

परन्तु यह निष्कर्ष, हमारे विचार से, गम्भीर एवं प्रबुद्ध नहीं है, क्योंकि इससे स्वामी विवेकानन्द के पृथकत्व का बोध होता है, जो वास्तविक नहीं है। ऐसे कई तथ्य हैं, जो हमें यह सोचने को बाध्य करते हैं कि भले ही श्री रामकृष्ण ने स्पष्ट रूप से सेवायोग का प्रतिपादन न किया हो, परन्तु यह उनके उपदेशों में अव्यक्त रूप से विद्यमान था, जिसे स्वामी विवेकानन्द ने केवल अभिव्यक्त किया। यह तथ्य स्पष्ट नहीं होने पर भी संकेत पूर्ण है। जो लोग श्री रामकृष्ण के ईश्वरत्व में विश्वास करते हैं, उन्हें निम्नलिखित गुह्य तथ्य सहसा यह विश्वास प्रदान करा देगा कि स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रचारित सेवायोग एवं उनकी सम्पूर्ण कर्मनीति श्री रामकृष्ण के अभिप्राय के विपरीत नहीं है, बल्कि इसमें उनका पूर्ण समर्थन है। सर्वप्रथम हम स्वामी विवेकानन्द की एक स्वीकारोक्ति का उल्लेख कर सकते हैं। उन्होंने अपने शिष्य शरतचन्द्र चक्रवर्ती से कहा था कि माँ काली ने ही उनसे सभी कार्य कराया है। हम यह भी याद कर सकते हैं कि लीलासंवरण के कुछ ही दिनों पहले श्री रामकृष्ण ने अपनी सारी शक्ति स्वामी विवेकानन्द के अन्दर संचारित कर दी थी। क्या यह कहना स्वाभाविक नहीं है कि स्वामी विवेकानन्द के माध्यम से श्री रामकृष्ण देव की ही आत्मा ने सारी योजना बनायी और अन्य चीजों के साथ ही सेवायोग का भी उपदेश दिया? हम यह जानते हैं कि श्री रामकृष्णदेव के आदेशानुसार ही स्वामी जी का अमेरिका गमन हुआ था। यह कहा जाता है कि जब वे अपना कर्तव्य निर्धारित नहीं कर पा रहे थे तो, एक रात उन्होंने स्वप्न में देखा कि श्री रामकृष्ण समुद्र के ऊपर से जा रहे हैं एवं उन्हें भी अपना अनुसरण करने के लिए कह रहे हैं। हमें यह प्रमाण भी है कि अमेरिका में भी स्वामीजी ने श्री रामकृष्ण का निर्देश कई अवसरों पर प्राप्त किया था। १८९५ ई० में अपने एक

गुरुभाई को प्रेषित पत्र में उन्होंने लिखा है, "ठाकुर बनेन श्री रामकृष्ण ने मुझे कहा है, इत्यादि।" उस पत्र में मठ-संगठन संबंधी विवरण है तथा उनके एक गुरुभाई की संगठन-शक्तिका भी उल्लेख है। हमें स्वामी विवेकानन्द के देहधारण के रहस्य एवं तात्पर्य को भी नहीं भूलना चाहिए। श्रीरामकृष्ण ने अपने शिष्यों से कहा था, नरेन अद्वैत चेतना में मग्न सुप्रसिद्ध सप्तर्षियों में से एक है तथा मैंने उन्हें समाधि से जगाकर, संसार के दुःख-कष्टों की बात बताकर, इनसे उद्धार करने के लिए मानव रूप में जन्म ग्रहण करने का अनुरोध किया था। इस पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि श्री रामकृष्ण चाहते थे कि संसार के दुःख-कष्टों को दूर करने के लिए नरेन एक शक्तिशाली माध्यम हो। और, सेवायोग के प्रवर्तन के बिना यह कैसे संभव हो सकता था? क्योंकि ईश्वरानुभूति के अन्य सभी मार्ग व्यक्तिगत मुक्ति के लिए प्रभावकारी होते हुए भी, अधिकांश मानवता को अपने लाभकारी प्रभाव से वंचित ही रखते हैं। श्री रामकृष्ण की एक महिला भक्त को कुछ वर्षों पहले एक दिव्य दर्शन हुआ था। उन्होंने देखा कि श्री रामकृष्ण खड़े हैं एवं उनके पीछे गेरुआ वस्त्र धारी संन्यासियों की एक पलटन है। जब उन्होंने पूछा कि ये कौन हैं तो, श्री रामकृष्ण ने कहा कि वे उनके पदाधिकारी-गण हैं। यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति है। सेवाकार्यो में संलग्न उनके कई पदाधिकारियों ने अपने कार्यों में उनका मार्गदर्शन एवं संकट की घड़ियों में उनका सीधा हस्तक्षेप भी अनुभव किया है। श्री रामकृष्णदेव के जीवन एवं उपदेशों के प्रचार की भिन्न-भिन्न पद्धतियों ने जनमानस पर जो प्रभाव विस्तार किया है, उससे भी हम उनकी इच्छा का अनुमान लगा सकते हैं। संन्यासी शिष्यों द्वारा उनके संदेशों का प्रचार शुरू करने के पहले ही रामचन्द्र दत्त नामक एक गृही शिष्य ने उनका प्रचार कलकत्ता एवं आसपास के अन्य स्थानों में किया था। उन्होंने उन दिनों में व्यापक प्रभाव भी विस्तार किया था। वे एक मासिक पत्रिका निकालते थे तथा कई पुस्तकों की रचना की थी। साथ ही, वे व्याख्यान भी दिया करते थे। उनके प्रचार का मुख्य विषय था श्री रामकृष्णदेव का आध्यात्मिक उपदेश-भक्ति, पूजा, जप इत्यादि। उन्होंने कभी सोचा तक नहीं कि सेवायोग भी श्री रामकृष्ण के उपदेशों में से एक है। इसका परिणाम अब हम देख रहे हैं। यद्यपि श्री रामकृष्ण के संबंध में उनकी व्याख्या चन्द लोगों को आकर्षित एवं सन्तुष्ट की थी, परन्तु लोगों के हृदय में यह प्रचार कोई स्थायी प्रभाव कायम नहीं कर सका और कालक्रम से अपक्षय को प्राप्त हो गया। दूसरी ओर, हम देखते हैं कि रामकृष्ण संघ ने विस्तृत एवं गम्भीर प्रभाव विस्तार किया है। क्या यह स्पष्ट रूप से रामकृष्ण के जीवन एवं संदेशों के संबंध में रामकृष्ण संघ द्वारा की गयी व्याख्या की अधिक प्रामाणिकता को व्यक्त नहीं करता? इन सभी का उल्लेख हम यह प्रमाणित करने के लिए कर रहे हैं कि रामकृष्ण संघ का वर्तमान क्रिया-कलाप तथा सेवायोग का अभ्यास श्री रामकृष्णदेव के अभिप्राय के विरुद्ध नहीं है, बल्कि उनकी इच्छा एवं आत्मा के अनुरूप ही है। अब यह पता लगाना है कि उनकी किस स्पष्टोक्ति से सेवायोग का उद्भव हुआ। हमें मनोवैज्ञानिक संबंध ढूंढ़ निकालना है।

प्रश्न है: अगर सेवायोग श्री रामकृष्ण को अभीष्ट था तो, क्यों नहीं उन्होंने अपने जीवन काल में प्रत्यक्ष एवं स्पष्ट रूप से इसका उपदेश दिया तथा क्यों नहीं अपने शिष्यों को भी वैसा करने का आदेश दिया? इसका उत्तर बहुत ही सरल है। रामकृष्ण संघ के द्वितीय अध्यक्ष स्वामी शिवानन्द जी ने अपने एक पत्र में लिखा है—

"सर्वदा अत्युच्च आध्यात्मिक स्तर पर रहने के कारण श्री रामकृष्ण के लिए सांसारिक दुःख तकलीफों को दूर करना हमेशा संभव नहीं था, परन्तु यह सोचना गलत होगा कि वे उसके प्रति उदासीन थे। उन्होंने जिन आदर्शों का पालन स्वयं किया एवं जिन्हें सूत्ररूप में अपनी वाणी द्वारा व्यक्त किया, उन्हीं आदर्शों का पालन एवं प्रचार स्वामी विवेकानन्द एवं अन्य लोगों ने किया है एवं कर रहे हैं। उच्च आध्यात्मिक स्तर पर विचरण करते समय स्वयं की खबर रखना भी श्री रामकृष्ण के लिए असंभव था। अतएव, उन्होंने अपने आध्यात्मिक विचारों को, ईश्वर के निर्देशानुसार, उन लोगों में प्रवाहित कर दिया, जो उन उच्च आध्यात्मिक सत्यों को शीघ्र आत्मसात् करके उन्हें मानवता के कल्याण में प्रयुक्त करने के लिए सक्षम थे। ऐसे लोगों में सर्वश्रेष्ठ थे स्वामी विवेकानन्द। वस्तुतः, स्वामीजी श्री रामकृष्ण के जीवन के श्रेष्ठ व्याख्याता एवं आध्यात्मिक सिद्धांतों पर उनकी उक्तियों के भाष्य थे। श्री रामकृष्ण एक शक्ति थे। उस शक्ति में ही वह बीज निहित है जिसका प्रवर्धन एवं विश्लेषण करने पर वह सर्वधर्म समन्वय की तरह ही सेवा-योग का रूप निश्चित रूप से धारण कर लेता है। वे एक Spirit थे, जिसका तत्व मानवीय कार्यों में प्रयुक्त करने पर वह सभी प्रकार के हितों को प्रेरक-शक्ति बन जाता है। श्री रामकृष्ण ने अपने शिष्यों के अन्दर इसी Spirit का संचार कर दिया था एवं ऐसा करके उन्होंने वैसा सब कुछ कर दिया, जो संसार के उत्थान के लिए आवश्यक था। उस Spirit का प्रयोग व्यक्तिगत एवं सामूहिक जीवन में कैसे किया जायगा—इस संबंध ने उन्होंने अधिक कुछ नहीं कहा। और, इसकी आवश्यकता भी नहीं थी क्योंकि उस Spirit का उपयुक्त रूपों में प्रकटीकरण होना ही था। इन्हीं रूपों में से एक है सेवायोग। अतएव, हमारा मुख्य कार्य श्री रामकृष्ण के Spirit के साथ सेवायोग का मनोवैज्ञानिक एवं आन्तरिक संबंध दर्शाना है।

ईश्वर मानवता का कल्याण कैसे करते हैं? क्या वे मानव-सेवा के उद्देश्य से परोपकारियों द्वारा किये जाने वाले प्रत्येक कार्य का निर्देश दिया करते हैं? नहीं। वे सत्पुरुषों के हृदय में केवल प्रेरणा-शक्ति के रूप में कार्य करते है। वे अदृष्ट परन्तु चिरस्थायी प्रेरणा स्रोत हैं, जो लोक हितैषियों को सेवाकार्यों के लिए प्रोत्साहित करते हैं। विस्तृत कार्यावली का निर्धारण सेवा करने वाले स्वयं करके उसे कार्यान्वित करते हैं। इसी प्रकार, श्री रामकृष्ण ने अपने शिष्यों के हृदय में प्रेरणा के मूल-स्रोत के रूप में अपने आप को प्रतिष्ठित कर दिया था। तथा उसके बाद उन्हें विशेष निर्देश देने की जरूरत नहीं थी। स्वामी शिवानन्द जी के शब्दों में, "अपनी आध्यात्मिक शक्तियों एवं प्रधान कार्यों का भार वहन करने वाले योग्य शिष्यों को उन्होंने (श्री रामकृष्ण ने) ढूँढ़ निकाला था तथा अपनी अंत-लीला के दिनों में उन उत्तराधिकारियों को आवश्यक प्रशिक्षण दिया था। महासमाधि के कुछ ही दिनों पहले उन्होंने अपनी सारी शक्ति स्वामी विवेकानन्द में प्रवाहित कर दी थी।" यह भी एक कारण है जिसके चलते जो लोग उनके सम्पर्क में आये एवं जिन्हें उन्होंने योग्य पाया, उनके प्रति उनका एक ही उपदेश था, ईश्वरानुभूति के लिए अपने आप को समर्पित कर दो। क्योंकि जो ईश्वरानुभूति प्राप्त कर लेता है, वही मानव की सेवा करने के योग्य एवं सक्षम होता है। वे प्रायः कहा करते थे कि ईश्वरीय-शक्ति से शक्तिमान होकर मानव आश्चर्यजनक कार्य कर सकता है, परन्तु उसके बिना, जीवन भर का प्रयत्न व्यर्थ चला जाता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि वे परोपकार के विरोधी थे। जिनकी आध्यात्मिक मानसिकता थी, उन्हें वे आध्यात्मिक साधना में लगाना चाहते थे।

इसके कई कारण हैं। श्री रामकृष्ण ने जिन-जिन लोगों को सेवाकार्य के विरुद्ध उपदेश दिया था, उन्हें हम तीन श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं। (1) कई लोग थे, जो अति अहंकारी थे। उनके द्वारा किया जाने वाला परोपकार एक प्रकार का पेशा मात्र था, जिसे उन्होंने अन्य पेशाओं की तरह अपनाया था। ऐसी प्रवृत्ति परोपकार करने वाले व्यक्ति की भलाई तो नहीं ही करती साथ ही समाज की असंख्य हानि भी पहुँचाती है, क्योंकि ऐसे लोग अपने आप को समाज का गतिनियन्ता सोचकर पुरानी चीजों का ध्वंस करते हैं एवं ऐसी नयी चीजों का प्रवर्तन कर देते हैं, जो अन्ततोगत्वा हानिकारक ही सिद्ध होती हैं। ऐसे लोगों के लिए श्री रामकृष्ण का उपदेश कटु एवं तीक्ष्ण था। वे उन्हें यह याद दिलाना चाहते थे कि ईश्वर ही संसार के रक्षक हैं। (2) शंभु मल्लिक, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, ईशान मुखर्जी आदि लोग दूसरी श्रेणी के थे, जो पीड़ित मानवता के दुःख-दर्दों को वास्तव में अनुभव करते थे एवं सेवा को ही जीवन का चरम उद्देश्य मानते थे। श्री रामकृष्ण ने देखा कि उनको यह विचार उनकी उच्च आध्यात्मिक अनुभूति के मार्ग में बाधक स्वरूप है। इसीलिए उन्होंने इन लोगों को कर्मत्याग करने को कहा था। शंभु मल्लिक से उन्होंने पूछा था, "यदि तुम्हें ईश्वर दर्शन हो तो, क्या तुम उनसे स्कूल, अस्पताल आदि माँगोगे ?" वे उन्हें यह बताना चाहते थे कि दूसरों की भलाई करना उच्च आध्यात्मिक अनुभूति के लिए उपाय मात्र है; चरम लक्ष्य नहीं। आदर्श हिन्दू की निर्भ्रान्ति मूल-प्रवृत्ति ही श्री रामकृष्ण के श्री मुख से व्यक्त हुई। हिन्दूधर्म कभी नहीं भूलता कि परम परोपकारिता भी उच्चतम सत्य की तुलना में तुच्छ ही है; क्योंकि उसमें भी अज्ञान एवं अहंकार की विद्यमानता होती है। इसके भी परे चले जाना चाहिए। हमने इस तथ्य का पहले ही उल्लेख किया है कि सहानुभूति को भी पूजा एवं ईश्वर दर्शन के साधन के रूप में अवश्य परिवर्तित कर देना चाहिए। सेवा का पात्र मानव है—इस बोध को एवं दयाभाव को दूर करना चाहिए। (3) तीसरे दर्जे के लोग उनके अन्तरंग शिष्यगण थे, जिन्हें वे ईश्वरानुभूति प्राप्त करने में विशेष रूप से लगाना चाहते थे, क्योंकि वे उन्हें उच्चतम ज्ञान का अधिकारी एवं Puissant Spirit के योग्य ग्रहणकर्ता बनाना चाहते थे, ताकि वे परवर्तीकाल में वे मानव-सेवा हेतु प्रभावशाली रूप से अपने आप को नियोजित कर सकें। इन्हीं कारणों से उन्होंने व्यक्तिगत रूप से सेवायोग का उपदेश नहीं दिया। वे पूर्ण आध्यात्मिक योजना के सारतत्व को लेकर व्यस्त थे। यह जानते हुए उन्होंने बीज का वमन किया कि जमीन उपजाऊ है तथा वृक्ष अपने आप वृद्धि को प्राप्त होगा। सेवायोग श्री रामकृष्ण के जीवन एवं उपदेशों में उपलक्षित था।

हमने कहा है कि श्री रामकृष्ण ने अपने आप को किसी भी खास सिद्धात से सीमाबद्ध नहीं किया; परन्तु उनके Spirit का मूलतत्त्व उनके निम्नलिखित दो उपदेशों में व्यक्त हुआ है; (1) मानव का एकमात्र कर्तव्य ईश्वरानुभूति अथवा सत्यानुभूति प्राप्त करना है; (2) विभिन्न धर्ममत एक ही ईश्वर अथवा सत्य तक पहुँचने के अलग-अलग रास्ते हैं। उनके जीवन एवं उपदेशों में इन दो मूलतत्वों पर बार-बार जोर दिया गया है। पहला अधारभूत है, क्योंकि यह जीवन के प्रति आध्यात्मिक दृष्टिकोण प्रदान करता है, जिसके अनुसार मानव द्वारा किया गया प्रत्येक कार्य ईश्वर-प्राप्ति में सहायक होना चाहिए। इसका यही अर्थ हुआ कि प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य-कर्म पूजा है, परन्तु आंशिक रूप से ऐसा होने पर भी यह पूर्णरूप से सेवायोग नहीं है। कर्तव्य-कर्म से साधारणतः पारिवारिक कर्तव्य समझा जाता है। औसत व्यक्ति का कार्यक्षेत्र साधारणतः पारि-

वारिक दायरे में ही सीमित रहता है, जहाँ सामाजिक कर्तव्य पालन की बहुत ही कम संभावना रहती है, परन्तु सेवायोग की परिधि बहुत ही बड़ी है, इसके अनुसार पड़ोस, देश एवं विश्व-अर्थात सम्पूर्ण पीड़ित मानव जाति की सेवा करना व्यक्ति का कर्तव्य हो जाता है। यह सीमा का विस्तार कर देता है। अतएव, सेवायोग कर्तव्य-कर्मों का केवल आध्यात्मीकरण ही नहीं है, बल्कि इसके अन्तर्गत अतिरिक्त कर्मों का भी समावेश है। यह अतिरिक्त कर्तव्य-कर्म श्रीरामकृष्ण के प्रथम उपदेश से व्युत्पन्न नहीं किया जा सकता। हमारे विचार से यह संयोजन उनके सर्वधर्मसमन्वय के उपदेश से व्युत्पन्न किया जा सकता है। यह उनका अनुपम उपदेश है। सर्वधर्मसमन्वय के सिद्धांत के अनुसार अपने धर्ममत की तरह अन्य धर्ममत भी ईश्वरानुभूति प्राप्त करने का सुमार्ग है। अतएव, दूसरे धर्मों के प्रति कट्टर नहीं होना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति इस सिद्धांत का पालन नहीं करता है, तो क्या इससे उसकी व्यक्तिगत आत्मानुभूति बाधित होगी? नहीं। हम जानते हैं कि कई ऐसे ईसाई ईश्वरानुभूति सम्पन्न हुए हैं, जो हमें भ्रान्त मूर्तिपूजक समझते थे। कट्टरता सदा व्यक्ति की आध्यात्मिक प्रगति में हानिकारक नहीं भी हो सकती है, परन्तु यह बुद्धि को संकुचित कर देती है एवं समाज पर इसकी बुरी प्रतिक्रिया होती है। सामाजिक असामंजस्य एवं वैमनष्यता पैदा होती है। अतएव, सर्वधर्मसमन्वय का सिद्धांत प्रधान रूप से सामाजिक, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रिय एकता एवं सामंजस्य ही स्थापित करता है। इसे मौलिक रूप से आध्यात्मिक नहीं मानने का यही कारण है। अतएव, श्री रामकृष्ण का यह सिद्धांत अध्यात्म की अपेक्षा समाज-सेवा से अधिक संबंधित है। क्या सेवायोग के साथ इसका कोई संबंध है?

परन्तु ऐसा नहीं समझना चाहिए कि सर्वधर्मसमन्वय के सिद्धांत का आध्यात्मिकता के साथ कोई संबंध ही नहीं है। इसका एक पहलू एक नये आध्यात्मिक आदर्श की शिक्षा देना है। साधारण धारणा यही है कि प्रत्येक व्यक्ति को ईश्वर के किसी एक रूप की अनुभूति करनी चाहिए, परन्तु इस सिद्धांत के अनुसार, ईश्वर के जितने रूपों का संभव हो सके, उतने रूपों की अनुभूति करनी चाहिए। श्रीरामकृष्ण की रँगरेज वाली बात बहुत ही महत्वपूर्ण है। एक रँगरेज के पास एक घमेलाभर रंग था। उस एक ही घमेले से वह विभिन्न रंगों को उत्पन्न करता था। हममें से प्रत्येक को उसी रँगरेज की तरह, ईश्वर को उनके सर्वरूपों में दर्शन करने के लिए सक्षम होना चाहिए। इस नये युग में ऐसे लोगों की आवश्यकता है, जिनमें सार्वभौमिक सहानुभूति हो; केवल सहानुभूति ही नहीं, श्रीरामकृष्ण की तरह सर्वधर्मों के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेने की क्षमता हो। परन्तु सर्वधर्मसमन्वय के सिद्धांत को यदि धार्मिक सहानुभूति तक ही सीमित रखा जाय, तो उसकी उपयोगिता बहुत ही कम होगी, क्योंकि मानव-मानव के बीच जो संबंध है, उसमें धार्मिक पक्ष सौवाँ भाग भी नहीं है। क्या मानव के साधारण संबंध के साथ इसका कोई सम्पर्क नहीं है? जब हम अपने दैनन्दिन जीवन में साधारण लोगों से मिलते हैं तो क्या हमें वहाँ समन्वय के सिद्धांत का पालन नहीं करना चाहिए? कम से कम श्रीरामकृष्ण ने तो वैसा किया था। वे यह जानते थे कि प्रत्येक व्यक्ति के साथ, चाहे वह सांसारिक हो या आध्यात्मिक, कैसे तादात्म्य स्थापित करें। इसका रहस्य क्या था? वे प्रत्येक मानव के अन्दर निहित ईश्वर का दर्शन करते थे, जो क्रमशः अपने आप को अभिव्यक्त कर रहे हैं। अतः उनके लिए प्रत्येक जीवन धर्म था। इसी Spirit में स्वामी विवेकानन्द ने कहा था, काश प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक-एक धर्म होता! उन्होंने

अपने एक व्याख्यान में कहा था कि प्रत्येक जीवन धर्म है। मानव के प्रति ऐसा दृष्टिकोण रखना वास्तविक रूप से सर्वधर्मसमन्वय को अनुभूति करना है एवं तभी श्रीरामकृष्ण के इस उपदेश का मुख्य उद्देश्य, विश्व शांति स्थापित करना, पूरा होगा। मानव के प्रति यह नया दृष्टिकोण मानव की पूजा ईश्वर के रूप में करने के समान ही है, क्योंकि जबतक प्रत्येक जीवन में हम ईश्वर को अभिव्यक्ति नहीं देखते, तबतक हम सही मायने में सर्वधर्मसमन्वय-कर्ता नहीं हो सकते। अतएव, यहाँ मनोवैज्ञानिक संबंध है, क्योंकि समन्वय एवं सेवा का दृष्टिकोण मानव में निहित देवत्व के प्रति सचेतन होने से ही उत्पन्न होता है। वस्तुतः हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि जबतक सेवा का भाव (Spirit) नहीं है, तबतक धर्मसमन्वय केवल व्यर्थ का बकवास मात्र होकर रह जायगा, क्योंकि यह भाव न केवल विचार में प्रवेश करना चाहिए, बल्कि कर्म में भी परिणत होना चाहिए और ऐसा होने पर इसका द्विविध प्रकटीकरण होगा। परन्तु, ये दोनों एक ही सत्य के दो पहलू हैं। जैसा कि स्वामी शिवानन्द जी ने कहा था कि स्वामी विवेकानन्द थे श्रीरामकृष्ण के जीवन के व्याख्याता; उनके सूत्र रूप उपदेशों के भाष्य। श्रीरामकृष्ण ने अपने शिष्यों को इस भाव से अनुप्राणित कर दिया था। यह भाव सत्य एवं संसार के एकत्व से कम नहीं है। जब कोई व्यक्ति पूर्णरूप से इस दृष्टिकोण को अपना लेता है तो इसकी तुरीय (Noumenal) एवं दृश्य प्रपंच (Fhenomeneral) दोनों स्तरों पर अभिव्यक्ति होती है। ये अभिव्यक्तियाँ हैं—तुरीय स्तर पर परम सत्ता के साथ एकत्व बोध एवं प्रतीयमान स्तर पर ईश्वर के साथ लीला, क्योंकि ईश्वर ही अपने आप को विश्व के विभिन्न रूपों में विभिन्न प्रकार से अभिव्यक्त कर रहे हैं। फिर, यह प्रतीयमान पक्ष समन्वय एवं सेवा का द्विविध-रूप धारण करता है एवं इसका आधार अद्वैत चेतना है। ये सभी मनोवैज्ञानिक तथ्य हैं; इनमें हम स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रचारित सेवा योग का स्रोत अच्छी तरह से ढूँढ़ निकाल सकते हैं। साधारण तौर पर, प्रेम एवं सहानुभूति से सेवा की उत्पत्ति होती है परन्तु सतत अभ्यास के द्वारा हमारी सहानुभूति जब पार्थिव दोषों से मुक्त हो जाती है, जब हम पीड़ित मानवता को ईश्वर के विभिन्न रूपों के रूप में देखना सीख जाते हैं तो, हम पाते हैं कि मानव में निहित देवत्व बोध ही हमारी सेवा का प्रेरक हैं एवं ऐसी सेवा ईश्वरानुभूति का एक सक्षम साधन बन जाती है; यही सेवायोग है। जहाँ तक रामकृष्ण संघ का प्रश्न है, इसका स्रोत इसी मनोविज्ञान में अनुमार्गणीय है, जो श्रीरामकृष्ण के सम्पूर्ण उपदेशों, खासकर उनके सर्वधर्म समन्वय के उपदेश के मूल में है। वस्तुतः श्रीरामकृष्ण एवं स्वामी विवेकानन्द—दोनों ने जीवन एवं सत्य के प्रति कुछ खास दृष्टिकोणों को अपनाया एवं उन्हीं का उपदेश किया; सर्वधर्म समन्वय एवं सेवा– ये दोनों इसी दृष्टिकोण से निर्गत हुए हैं। स्वामी विवेकानन्द का एक और सिद्धांत, पाप नाम की कोई चीज नहीं है, इसी से निकला है। ये सभी अद्वैत-चेतना से ही उत्पन्न होते हैं।

इस विषय के संबंध में हमारी यही धारणा है। हो सकता है, श्रीरामकृष्ण ने स्वामी विवेकानन्द एवं अन्य शिष्यों को मानव सेवार्थ ऐहिक कार्यों को करने एवं सेवायोग का प्रचार करने के लिए (जिसके द्वारा एक विश्वस्तरीय सेवाभाव उत्पन्न होकर एक ओर तो राष्ट्रीय जीवन को सर्वांगीण रूप से पुनरुज्जीवित करेगा एवं दूसरी ओर सेवा करने वालों की चित्त शुद्धि करके उन्हें मानव जीवन के एकमात्र उद्देश्य, आत्मानुभूति, की ओर ले जायगा), स्पष्ट रूप से कुछ नहीं कहा हो, परन्तु उनके उपदेशों में वह तत्व है जो प्रत्यक्ष एवं अनिवार्य रूप से हमें इन सिद्धांतों तक पहुँचा देता है। यदि, श्रीरामकृष्णदेव का उपदेश बीज था

तो, स्वामी विवेकानन्द एवं उनके अन्य अन्तरंग शिष्यों के उर्वर जीवन में इसने एक महान वृक्ष का रूप धारण कर लिया, जिसकी मुख्य शाखा है—सेवा योग।

(स्वामी अशोकानन्द द्वारा लिखित सम्पादकीय : प्रबुद्ध भारत, फरवरी १९२८ अंक,से साभार उद्धृत एवं अनूदित। अनुवादक—ब्र० रामेश्वर, बेलुड़ मठ।)

नरेन्द्रनाथ और सत्य की खोज

— स्वामी शशांकानन्द
बेलुड़ मठ

जब सारा विश्व भौतिकवाद की आंधी में, पाश्चात्य सभ्यता की चमक दमक से चुंधियाई आँखों से अज्ञानांधकार में इन्द्रिय-सुख खोज रहा था, काम-कांचन की क्रीत दास बनकर भटक रहा था, उस समय नरेन्द्रनाथ (स्वामी विवेकानन्द) भटक रहे थे एक ऐसे व्यक्ति की खोज में जिसने ईश्वर को देखा हो और उन्हें भी ईश्वर प्राप्ति करा सके। उनका मन भौतिकवाद की खोखली पर्तों को भेदकर, अज्ञानांधकार को विलीन करने वाले आदित्यवर्ण परब्रह्म की खोज में लगा हुआ था और ब्रह्मानन्द की प्राप्ति हेतु उनका जीवन वैराग्य पूर्ण हो उठा था।

ठीक उसी समय दीर्घकाल तक कठोर साधना और तपस्या में रत, भगवद्-प्रेम और व्याकुलता द्वारा सर्वोच्च आध्यात्मिक उपलब्धियों का भण्डार भरकर दक्षिणेश्वर में भगवान् श्री रामकृष्ण देव युग-प्रवर्तन के कार्य के लिए उस महापुरुष की खोज में थे जो इस कार्य के लिए ही पृथ्वी पर आने वाला था।

पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित धर्मप्राण भारत के नगरों के लोगों को भी भौतिकवादी एवं विषयी होकर काम-कांचन के क्रीतदास बने हुए देखकर ही श्री रामकृष्ण ने माँ सारदा से कहा था कि कलकत्ता के लोग अज्ञानांधकार में कीड़ों की तरह कुलबुला रहे हैं। किन्तु उसी कलकत्ता नगरी से आये हुए नरेन्द्रनाथ के प्रथम आगमन के समय ही उन्हें अपने कमरे में घुसते हुए देखकर श्री रामकृष्ण विस्मित हो उठे थे, "विषयी लोगों के निवास स्थल कलकत्ते में क्या इतना बड़ा सत्त्वगुणी आधार रहना भी सम्भव है?" श्री रामकृष्ण ने देखा नरेन्द्र को अपने शरीर का कुछ भी ध्यान न था, बाह्य पदार्थों पर साधारण मनुष्यों की तरह कुछ ख्याल ही न था। उसका सभी कुछ निराला था। उसकी आँखों से प्रतीत होता था मानो उसका मन किसी ने जबरदस्ती अन्तर्मुखी बना दिया था।

नरेन्द्रनाथ की प्रचेष्टा कलकत्ता वासियों की प्रचेष्टाओं से विपरीत क्यों? इस पर तनिक विचार करें। प्रत्येक व्यक्ति की अपने जीवन-लक्ष्य के सम्बन्ध में विभिन्न धारणाएं हैं। उसे वही वस्तु सत्य लगती है जो उसे उसके लक्ष्य की पूर्ति में सहायक लगे। सांसारिक भावापन्न व्यक्तियों के समक्ष वही वस्तु सत्य होती है जो उसे अर्थ प्राप्ति में सहायक हो, इन्द्रिय सुखों को सुलभ बना दे या दूसरों पर प्रभुत्व स्थापित करने की सामर्थ्य दे। ऐसे व्यक्ति के लिए जगत और जागतिक वस्तु ही सत्य हैं। जगत के परे ईश्वर, आध्यात्मिक

ज्ञान, आत्मा परमात्मा, केवल कवियों की कल्पना मात्र हैं। इसीलिए अल्पज्ञ पुरुष काम कांचन के वश बाह्य भोगों के प्रति आकर्षित होकर आवागमन के चक्कर में जन्मते और मरते रहते हैं। कठोपनिषद् में कहा है, "पराञ्चिखानि व्यतृणत्स्वयंभूस्तस्मात्पराङ्पश्यति नान्तरात्मन्।"—'परमात्मा ने इन्द्रियों को बहिर्मुखी करके हिंसित कर दिया है। इसी से जीव बाह्य विषयों को देखता है, अन्तरात्मा को नहीं।'

किन्तु जिसने अनित्य, नश्वर बाह्य विषयों की निरर्थकता को समझ लिया है, उसका मन क्षणिक इन्द्रिय सुखों की कामना नहीं करके नित्य, शाश्वत सच्चिदानन्द की उपलब्धि करना चाहता है। ईश्वर-प्राप्ति ही उसके जीवन का एक मात्र लक्ष्य होता है और ईश्वर ही उसे सत्य प्रतीत होता है बाकी सब मिथ्या। इसीलिए कठोपनिषद् में कहते हैं, "कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्त चक्षुरमृतत्वमिच्छन्न"—'जिसने अमृतत्व की इच्छा करते हुए अपनी दृष्टि बाह्य विषयों से हटाकर अन्तर्मुखी कर ली है, ऐसा कोई धीर व्यक्ति ही प्रत्यगात्मा को देख पाता है।'

नचिकेता ने यमराज के द्वारा प्रस्तावित दीर्घायु, पृथ्वी का राज्य, सुन्दर रमणियाँ, गो-धन, गजधन वाजधन और रत्नों की खान, इन सबको इन्द्रियों के तेज को जीर्ण करने वाली वस्तु कह कर ठुकरा दिया और एक मात्र आत्मज्ञान प्रदान करने की प्रार्थना की थी।

नरेन्द्रनाथ ने भी अपने जीवन का ध्रुवतारा ईश्वर-प्राप्ति को ही बनाया था। पिता की अकस्मात मृत्यु और आत्मीयस्वजनों द्वारा मामला मुकदमा के कारण नरेन्द्रनाथ के परिवार की आर्थिक दशा बड़ी ही सोचनीय हो उठी थी। नौकरी की तलाश में भरी दोपहर को दर-दर भटकने पर भी नरेन्द्रनाथ को नौकरी न मिली। दिन पर दिन माँ और बहन-भाइयों के लिए भर पेट भोजन भी न जुटा सके थे। ऐसी अवस्था जिसमें लोग अपना धैर्य खो बैठते हैं, पागल हो जाते हैं या आत्महत्या कर लेते हैं, नरेन्द्रनाथ जूझते रहे समाज से, दरिद्रता से, स्वजनों के अत्याचारों से किन्तु फिर भी अपने उन बाल्य बन्धुओं के दल में नहीं फँसे जो अब यौवन में असत् उपायों से धन कमा रहे थे।

एक धनी महिला ने उनके सामने प्रस्ताव रखा कि वे उस महिला को उसकी सम्पत्ति सह अपना कर अपना दुख क्लेश दूर कर सकते हैं। किन्तु ऐसी अत्यन्त असहाय अवस्था में भी नरेन्द्रनाथ ने इस प्रस्ताव को तीव्र अवज्ञा और कठोरता से ठुकरा दिया था। और एक महिला जब उन्हें प्रलोभन देने आयीं तो उन्होंने कहा, "देखो बच्ची, इस मिट्टी के शरीर के सुख के लिए तुमने अब तक न जाने क्या किया है, अब तो मृत्यु सामने है—उस पार जाने का क्या कुछ सम्बल भी संग्रह किया है? हीन बुद्धि को छोड़कर भगवान् को पुकार।"

किसी एक व्यक्ति, जो बारम्बार समाधिस्थ होते थे, उनके साथ नरेन्द्रनाथ की तुलना करते हुए श्री रामकृष्ण ने कहा था, "स्त्रियों के आदर-यत्न से वह व्यक्ति बिलकुल पिघल जाता है, परन्तु नरेन्द्र कभी वैसा नहीं होता। मैंने विशेष ध्यान देकर देखा है, वैसे क्षेत्र में मुँह से कुछ न कहने पर भी उसका भाव देखकर लगता है मानो वह असन्तुष्ट होकर मुँह फेरते हुए कह रहा है, 'ये लोग यहाँ क्यों?' "

काम-कांचन का त्याग स्वयं में एक महान कार्य है किन्तु किसी प्रकार इसमें सफलता मिल भी जाए तो भी काम-कांचन त्यागी का यश-मान की कामना से मुक्त होना अत्यन्त कठिन है। श्री रामकृष्ण ने देखा था, "जिस प्रकार के गुण या शक्ति प्रकाश में से केवल एक या दो के अधिकारी

हो कर मनुष्य संसार में यथेष्ट प्रतिष्ठा पा सकते हैं, नरेन्द्रनाथ के भीतर उस प्रकार की अठारह शक्तियों का प्रकाश पूर्णरूप से विद्यमान है। यदि वे उन शक्तियों को केवल आध्यात्मिक मार्ग में न लगा सकें तो फल विपरीत होगा अर्थात् वे दूसरे नेताओं की भाँति एक नये मत का दल बनाकर संसार में यश प्राप्त कर जायेगा।" किन्तु नरेन्द्र नाथ का मन यश-मान की ओर आकृष्ट न होकर श्री रामकृष्ण के चरणों में आध्यात्मिक भाव ग्रहण करता रहा। बाद में स्वामी विवेकानन्द के रूप में उन्होंने योगानन्द जी से कहा था, "सम्प्रदायों से भरे इस जगत् में और एक नवीन सम्प्रदाय पैदा कर देने के लिए मेरा जन्म नहीं हुआ। प्रभु के चरणों में आश्रय पाकर हम कृतार्थ हुए हैं। त्रिजगत् के लोगों को उनकी भाव-राशि देने के निमित्त हो हमारा जन्म हुआ है।"

ईश्वर दर्शन की प्रबल इच्छा के सामने उन्हें ऋद्धि, सिद्धि आदि शक्तियों का प्रलोभन भी अति तुच्छ लगता था। एक दिन श्री रामकृष्ण ने नरेन्द्रनाथ को बुलाकर कहा था, 'देख, तपस्या के प्रभाव से मेरे भीतर अणिमा आदि विभूतियाँ बहुत दिनों से ही प्रकट हुई हैं, परन्तु मेरे जैसे मनुष्य को, जिसके पहनने के वस्त्र तक ठीक नहीं रहते, इन विभूतियों के ठीक ठीक व्यवहार करने का अवसर कहाँ? इसलिए सोचता हूँ, माँ से कहकर उन सिद्धियों को दे दूँ। क्योंकि माँ ने बता दिया है कि तुझे उनके अनेक काम करने होंगे। वे शक्तियाँ तेरे भीतर संचारित रहें, तो कार्य क्षेत्र में उन्हें व्यवहार में लगा सकेगा, क्यों?" विशेष चिन्तित होकर नरेन्द्रनाथ ने उनसे पूछा, 'महाराज, क्या उनसे मेरे ईश्वर लाभ के सम्बन्ध में कुछ सहायता मिलेगी?"—श्रीरामकृष्णदेव ने कहा, "उस विषय में सहायता न होने पर भी जब ईश्वर लाभ करके तू उनका कार्य करने लगेगा, तब उनसे विशेष सहायता ले सकेगा।" नरेन्द्रनाथ ने सुनकर कहा, "महाराज! मुझे उनकी आवश्यकता नहीं है। पहले ईश्वर लाभ हो जाय; बाद में उनके ग्रहण करने और न करने के बारे में सोचा जाएगा।"

इस प्रकार इहलोक के समस्त प्रलोभनों को क्षणभंगुर और नश्वर जानकर नरेन्द्रनाथ के हृदय में ईश्वर प्राप्ति के हेतु व्याकुलता का अग्नि अल्प आयु से ही भड़कते-भड़कते शोलों में बदल गयी थी। श्रीरामकृष्ण के पास जाने से पहले हा उनकी अवस्था अत्यन्त वैराग्य पूर्ण हो उठी थी। ऐसा लगता था मानो पिंजरे में आबद्ध सिंह कारागार को तोड़कर बाहर निकलने के लिए असीम आग्रह के साथ छटपटा रहा हो। वे ऐसे गुरु की खोज में भटक रहे थे जिसने ईश्वर को देखा हो और उन्हें भी दिखा सके। एक-एक करके वे तत्कालीन धर्मनेताओं के निकट उसी उद्देश्य से गये थे। ब्रह्म-समाज के सदस्य भी बने थे। परन्तु कुछ बंधे हुए मतवादों और नियमित उपासना आदि द्वारा उनकी अत्युतकट आध्यात्मिक तृष्णा तृप्त न हुई।

उसी अवस्था में वे एक दिन गंगा में स्थित नौका, जिसमें महर्षि देवेन्द्रनाथ टैगोर रहते थे, उस पर जा पहुँचे एवं दरवाजे पर जोर से धक्का दिया। दरवाजा खुलने की आवाज से महर्षि का ध्यान भङ्ग हो गया और वे चौंक उठे। देखा सामने उन्मत्त की तरह तीव्र दृष्टि से ताकते हुए "संसारानलतप्तो दाप्तशिरा जलराशिमिव" नरेन्द्र-नाथ खड़े थे। रुद्ध कण्ठ से उन्होंने महर्षि से पूछा, "महाशय! क्या आपने ईश्वर को देखा है?' दो बार चेष्टा करने पर भी महर्षि के मुख से प्रश्न का उत्तर न निकला। अन्त में वे बोले, "नरेन्द्र तुम्हारी आँखें योगी की आँखें हैं। यदि नियमित रूप से ध्यान का अभ्यास करो तो ब्रह्मज्ञान के अधिकारी बन सकोगे।' नरेन्द्र सोचने लगा "यदि महर्षि जैसे ईश्वर-भक्त एवं ज्ञानी भी आज

तक ईश्वर दर्शन न कर सके तो और कौन कर सकेगा ? तो क्या ईश्वर, धर्मशास्त्र मानव की कोरी कल्पनाएं हैं ?" इत्यादि।

नरेन्द्रनाथ के मन में उठे तूफान ने उसे झकझोर दिया। वे अपने को संभाल न सके। दर्शन शास्त्र और धर्म सम्बन्धी पुस्तकों को दूर फेंक दिया क्यों कि वे ईश्वर प्राप्ति कराने में असमर्थ हैं। झंझावातों से जूझते हुए नरेन्द्र की संघर्षमयी रात उसे बेचैन कर रही थी। एकाएक उसके हृदय-पटल पर प्रकट हुए दक्षिणेश्वर के अद्भुत प्रेमिक श्री रामकृष्ण देव। असहनीय उत्कण्ठा से भरी रात बीतते न बीतते नरेन्द्रनाथ दक्षिणेश्वर की ओर दौड़ पड़े। भक्तों से घिरे हुए श्रीरामकृष्ण के सन्मुख नरेन्द्रनाथ ने घुसते ही कहा, "महाराज! क्या आपने ईश्वर को देखा है ?"

श्रीरामकृष्ण के प्रशान्त मुख मण्डल पर मधुर मुस्कान बिखर गयी और उन्होंने तुरन्त कहा, "हाँ बेटा, मैंने ईश्वर को देखा है। तुम्हें जिस प्रकार प्रत्यक्ष देख रहा हूँ- इससे भी कहीं अधिक स्पष्ट-रूप से मैंने उन्हें देखा है।" ऐसा उत्तर पाकर विस्मित नरेन्द्रनाथ स्तब्ध सा खड़ा रह गया। उससे भी अधिक विस्मय बढ़ाते हुए उन्होंने फिर कहा, "यदि तुम चाहो तो तुम्हें भी दिखा सकता हूँ।"

इस अमृतमयी वाणी ने नरेन्द्रनाथ के हृदय की ज्वाला को शान्त कर दिया। उन्हें जिनकी तलाश थी वे मिल गये। मन में विश्वास हुआ, आशा का संचार हुआ।

ज्यों-ज्यों श्रीरामकृष्ण ने अपने निजी अद्भुत दर्शनों द्वारा यह निश्चित रूप से जान लिया कि आधुनिक काल के प्रभाव से नरेन्द्रनाथ दारैषणा, वित्तैषणा एवं लोकैषणा आदि किसी प्रकार के बन्धन को स्वेच्छा से स्वीकार कर अपने परम लक्ष्य से तनिक भी च्युत न होगा, त्यों त्यों नरेन्द्र के प्रति उनका आकर्षण बढ़ता गया, प्रेम बढ़ता गया और वे उसे आध्यात्मिक जगत् में एक के बाद एक अनुभूति कराने लगे। कभी इच्छा या स्पर्श मात्र से तो कभी समाधिस्थ करके अलौकिक आनन्द का अनुभव कराने लगे। ईश्वर सम्बन्धी समस्त संशय छिन्न हो गये। नरेन्द्रनाथ को प्रत्यक्ष अनुभूति हुई— ईश्वर है। ईश्वर प्राप्ति की जा सकती है।

श्री श्री रामकृष्ण लीला प्रसङ्ग में श्रीमत् स्वामी सारदानन्द जी ने निम्नलिखित घटना का उल्लेख किया है जिससे नरेन्द्रनाथ को हुई अनुभूति का प्रमाण मिलता है। श्रीरामकृष्ण के विषय में बातचीत करते-करते नरेन्द्रनाथ लेखक आदि को टेदुआ तलाब के किनारे घुमाने ले गये और आनन्द विभोर होकर 'प्रेम धन बिलाय गोरा राय," यह गाना गाने लगे। गाना समाप्त होने पर मानो अपने को ही सम्बोधित कर कहने लगे, "सचमुच ही बाँट रहे हैं। प्रेम कहो, भक्ति कहो, ज्ञान कहो, मुक्ति कहो, गौरांगराय जिसे जो देना चाहते हैं, उसे वही दे रहे हैं, कैसी अद्भुत शक्ति है। (कुछ क्षण स्थिर रहने के अनन्तर) रात को कमरे में किवाड़ लगाकर मैं बिछौने पर पड़ा था। एकाएक आकर्षित कर दक्षिणेश्वर में हाजिर करा दिया - शरीर के भीतर जो है उसी को; उसके बाद अनेक बातें और उपदेश सुनाकर फिर लौटा दिया। सब कर सकते हैं— दक्षिणेश्वर के गौरांगराय सब कुछ कर सकते हैं।"

ईश्वर सर्वव्यापक हैं। "ईशावास्यमिदं सर्वं यात्किंच जगत्यां जगत्।" उसी सर्वव्यापक ब्रह्म की अभिव्यक्ति के अनेक स्थान हैं। उसकी उपासना के साधारणतया तीन स्थान हैं। (१) मूर्ति या प्रतीक में (२) हृदयाकाश में स्थित आत्मा (३) एवं सर्वभूतों में। एक-एक करके श्री रामकृष्ण देव ने नरेन्द्र को इन तीनों में ही ईश्वरोपलब्धि करा दी थी।

मूर्ति-पूजा

एक दिन माँ भुवनेश्वरी देवी के कहने पर नरेन्द्र श्री रामकृष्ण देव के पास गये और उनके चरण पकड़ कर हठपूर्वक कहा "माँ-भाइयों का कष्ट दूर करने के लिए आपको माँ जगदम्बा से प्रार्थना करनी होगी।" श्रीरामकृष्ण ने कहा कि उन्होंने अनेक बार माँ से उसके (नरेन्द्र के) कष्ट निवारणार्थ प्रार्थना की थी पर क्योंकि वह उन्हें नहीं मानता इसीलिए माँ उनकी प्रार्थना नहीं सुनतीं। यदि नरेन्द्र स्वयं आज रात माँ के पास जाकर प्रार्थना करें तो वे अवश्य ही सुनेंगी।

प्रवल उत्कण्ठा से नरेन्द्र रात्रि की प्रतीक्षा करता रहा। रात एक प्रहर बीत जाने पर ठाकुर ने उन्हें मन्दिर जाने के लिए कहा। गुरु वचनों पर आज विश्वास जम उठा। विश्वास से मन एकाग्र हो गया। बाह्य जगत् विलीन होने लगा। लड़खड़ाते पाँवों से वेसुध नरेन्द्र मंदिर में जा पहुँचे। यह क्या ? मृण्मयी मूर्ति चिन्मयी माँ जगदम्बा बन कर सामने खड़ी थीं। वे अब पाषाणी न थीं,। अनन्त प्रेम और परम सौंदर्य की आधार रूपिणी प्राणमयी माँ थीं। बारम्वार प्रणाम करते हुए नरेन्द्र कहने लगे, "माँ मुझे विवेक दो, वैराग्य दो, ज्ञान दो भक्ति दो जिससे मैं तुम्हारा अबाध दर्शन नित्य प्राप्त कर सकूँ, वैसा कर दो।"

शान्तचित्त प्रसन्नता से परिपूर्ण नरेन्द्र चौंक उठा जब श्रीरामकृष्ण ने उससे पूछा "क्यों रे, माँ से गृहस्थी का अभाव दूर करने की प्रार्थना की है न ? 'नरेन्द्र से सारी घटना सुनकर श्री रामकृष्ण ने उन्हें पुनः माँ के पास मंदिर में भेजा। दूसरी बार भी वैसा ही हुआ ज्ञान, भक्ति, विवेक और वैराग्य की याचना कर वे लौट आये। श्रीरामकृष्ण ने तृतीय बार उन्हें समझाकर भेजा किंतु इस बार भी मंदिर में पहुँच कर उसे बड़ी लज्जा का अनुभव हुआ, "यह कैसी तुच्छ बात मैं माँ से कहूँ ? और, वे माँ से कह उठे, "मैं और कुछ नहीं माँगता माँ केवल ज्ञान और भक्ति दो।"

मृण्मयी में चिन्मयी के दर्शन कर नरेन्द्र के जीवन का एक नया अध्याय आरम्भ हुआ। श्री रामकृष्ण के आनन्द, का पारावार न रहा, 'नरेन्द्र ने आज माँ को मान लिया है। मूर्ति-पूजा विरोधी संदिग्ध चित्तवालों के लिए विवेकानंद जी ने कहा था, "वह अन्धा है—एक दम अंधा है, जो समय के संकेत को नहीं देख सकता, नहीं समझ सकता। क्या देखते नहीं, सुदूर गाँव में दरिद्र ब्राह्मण माँ-बाप से पैदा हुआ वह बालक आज उन सब देशों में प्रत्यक्ष पूजित हो रहा है, जो अनेक सदियों से मूर्ति-पूजा के विरुद्ध आवाज उठाते रहे हैं।"

निर्विकल्प समाधि

तर्क और संदेहों से मुक्त अब नरेन्द्रनाथ हृदयाकाश में स्थित अन्तरात्मा की अनुभूति के लिए आहारनिद्रा आदि त्यागकर कठोर तपस्या में लग गये। जैसे-जैसे इन साधनाओं के फलस्वरूप अनुभूतियाँ होती रहीं वे साधन-पथ पर अग्रसर होते रहे। अन्त में उन्हें यह बात समझ में आ गयी कि निर्विकल्प समाधि की प्राप्ति के बिना उनके हृदय की आध्यात्मिक पिपासा शान्त न होगी।

जिस नरेन्द्रनाथ ने वेदांत ग्रंथ का अध्ययन करने से इनकार कर दिया था, 'लोटे में ब्रह्म है, कटोरी में ब्रह्म है, सबमें ब्रह्म है, 'आदि कहकर उपहास किया था; 'मनुष्य में भगवान है,' ऐसा कहना पाप है कहा था, वही नरेन्द्रनाथ जब श्रीरामकृष्ण के पास वेदांत की चरम अवस्था 'निर्विकल्प समाधि की कामना लेकर गये तो उन्होंने कहा, "बार-बार यही बात कहते तुझे लज्जा नहीं आती ? समय आने पर तू वट-वृक्ष की तरह बढ़कर सैंकड़ों लोगों को शांति की छाया देगा, और कहाँ आज अपनी ही मुक्ति के लिए व्यस्त हो उठा ? इतना क्षुद्र आदर्श तेरा ?" किंतु नरेन्द्र नाथ ने उनका पीछा न

छोड़ा। बार-बार निर्विकल्प समाधि की याचना करने पर श्री रामकृष्ण देव ने आशीर्वाद किया, "अच्छा तुझे निर्विकल्प समाधि होगी।"

श्री रामकृष्ण देव की अपार करुणा से एक दिन सांयकाल ध्यान करते-करते नरेन्द्रनाथ अप्रत्याशित रूप से निर्विकल्प समाधि में डूब गये। गो गोचर जगत् सब कुछ मानो महाशून्य में विलीन हो गया। देशकाल-निमित्त से परे, जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति से परे तुरीय अवस्था में अन्तरात्मा प्रकाशित हो उठी। जन्म जन्मान्तर की अशान्ति मिट गयी, संदेह विलीन हो गये। ब्रह्मानन्द में विभोर नरेन्द्र श्री गुरु चरणों में उपस्थित हुए। उसे इस अवस्था में देखकर श्री रामकृष्ण ने हंसते हुए कहा, 'तो फिर अभी के लिए ताला बन्द रहा, कुंजी मेरे हाथ में है। काम समाप्त होने पर फिर खोल दिया जाएगा।

शिव ज्ञान से जीव सेवा—सर्वभूतों में पूजा

निर्विकल्प समाधि में जो ब्रह्मानुभूति नरेन्द्रनाथ को अपने भीतर हुई वही ब्रह्मानुभूति यदि सर्वत्र और सर्वभूतों में हो तभी अनुभूति अपनी चरम सीमा पर पहुँचती है। इसीलिए श्री रामकृष्ण नरेन्द्र को उसी उपलब्धि के लिए तैयार कर रहे थे।

सन् १८८४ ई० की बात है। एक दिन श्री रामकृष्ण वैष्णव धर्म का मर्म समझा रहे थे। तीन पालनीय उपदेश हैं—जीवों के प्रति दया, नाम में रुचि और साधु-सङ्ग। 'सब जीवों पर दया' कहते ही श्रीरामकृष्ण समाधिस्थ हो गये। कुछ क्षणों बाद अर्धबाह्य दशा में लौटने पर कहने लगे, 'जीव पर दया—जीव पर दया? धत् तेरी, कीटाणु कीट हो कर तू जीव पर दया करेगा? दया करने वाला तू कौन? नहीं नहीं, जीव पर दया नहीं—शिव ज्ञान से जीव की सेवा।"

इन गूढ़ बातों का मर्म केवल नरेन्द्रनाथ ही समझ सके थे। बाहर आने पर वे अपने साथियों से कहने लगे, "आज ठाकुर की बात से कैसा अद्भुत प्रकाश दिखाई पड़ा। जिस वेदान्त ज्ञान को लोग शुष्क, कठोर और ममता रहित समझते हैं, उसे भक्ति के साथ सम्मिलित करके कैसे सहज, सरस और मधुर प्रकाश का उन्होंने प्रदर्शन करा दिया। ....'और तभी वेदांत ज्ञान को घर-घर में लाने का संकल्प नरेन्द्रनाथ ने किया था।

परिव्राजक अवस्था में सारा भारत-भ्रमण कर भारत और दीन-हीन भारतवासी की दुर्दशा देखकर, कन्याकुमारी की अंतिम चट्टान पर बैठकर 'शिव ज्ञान से जीव सेवा' के भाव में अश्रु धारा प्रवाहित करते हुए स्वामी विवेकानन्द जी ने युग मंत्र उच्चारण किया था, 'मूर्ख देवों भव" "दरिद्र देवो भव"। अद्वैतज्ञान के अपूर्व मार्ग पर आह्वान करते हुए 'आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च' अपना जीवन उत्सर्ग करने के लिए उन्होंने सभी को युग धर्म के लिए प्रेरित किया था।

स्वामी जी को अद्वैत ब्रह्म के दर्शन सर्वभूतों में होते थे। इस प्रकार की घटनाएँ उनके जीवन और उपदेशों में हमें मिलती हैं। उन्होंने कहा था, 'क्या तुम अपने भाई—मनुष्य जाति को प्यार करते हो? ईश्वर को कहाँ ढूंढने चले हो?— ये सब गरीब, दुखी दुर्बल मनुष्य क्या ईश्वर नहीं हैं? इन्हीं की पूजा पहले क्यों नहीं करते? गंगा तट पर फिर कुआँ खोदने क्यों जाते हो?"

"बहुरूप में तब सन्मुख तज कहाँ खोजते हो ईश्वर।
सब जीवों में जो करे प्रेम उसकी सेवा लेते ईश्वर॥"

"इतनी तपस्या करने के बाद मैंने इस सत्य को समझा है कि ईश्वर सब जीवों में विराजमान हैं; उससे परे और कोई ईश्वर नहीं है। 'जो जीव-सेवा करता है वह शिव की ही पूजा करता है।"

इस अनुभूति के साथ ही नरेन्द्रनाथ की साधनाओं की पूर्ति हुई। इसी के आधार पर स्वामी विवेकानन्द मानव जाति के लिए युग धर्म की रूप रेखा प्रस्तुत कर गये हैं।

स्वामी विवेकानन्द का व्यावहारिक जीवन-दर्शन

— स्वामी सत्यरूपानन्द
बेलुड़ मठ

स्वामी विवेकानन्द जी ने कहा है :—

"भारत में दर्शन का तात्पर्य है, जिसके द्वारा ईश्वर का दर्शन किया जाय वह (दर्शन) धर्म का तात्विक आधार है।"[1]

हम जानें या न जानें हमारा जीवन कुछ ज्ञात, अज्ञात बद्धमूल धारणाओं द्वारा संचालित होता है। ये धारणाएँ असंस्कृत, रूढ़, अयौक्तिक भी हो सकती हैं, या संस्कृत, सुष्ठ, सुचिंतित तर्कपूर्ण भी हो सकती है। इन धारणाओं के शुद्ध, सुष्ट, संस्कृत होने पर हमारा जीवन भी शुद्ध सुष्ट, तथा संस्कृत होता है और यदि हमारी धारणाएँ असंस्कृत, अयौक्तिक तथा अशुद्ध हुईं तो हमारा जीवन भी उसी प्रकार असंस्कृत, अयौक्तिक तथा अशुद्ध हो जाता है।

हमारे विचारों और धारणाओं का हमारे जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। जीव, जगत्, जीवन का उद्देश्य, मनुष्य का भविष्य, जन्म, मृत्यु आदि के संबंध में हमारे विचार, हमारी धारणाएँ, हमारे व्यावहारिक जीवन को बहुत अधिक प्रभावित करते हैं। उदाहरणार्थ, जो व्यक्ति ऐसा मानता है कि 'मेरे जीवन का कोई दर्शन नहीं है। मैं किसी दर्शन में विश्वास नहीं करता हूँ।' किसी दर्शन में विश्वास न होना, जीवन का कोई दर्शन न होना यही उस व्यक्ति का जीवन दर्शन है, इस जीवन-दर्शन के प्रभाव से उस व्यक्ति का जीवन प्रायः उद्देश्य-हीन, उथला और हलका हो जाता है। ऐसे व्यक्ति के जीवन में कोई गंभीरता और उच्चता नहीं होती। क्योंकि जीवन की गंभीरता और उच्चता, उच्च एवं गंभीर जीवन दर्शन पर ही निर्भर करती है।

जीवन दर्शन जितनी अधिक मात्रा में सत्य पर प्रतिष्ठित होगा, जितना उच्च एवं सुलझा हुआ होगा, अल्प शब्दों में दर्शन जितना सम्यक् तथा उन्नत होगा, जीवन भी उतना ही सम्यक् तथा उन्नत होगा। महर्षि मनु तो यहाँ तक कहते हैं कि बंधन या मुक्ति सम्यक् या असम्यक दर्शन पर निर्भर करता है।

सम्यग्दर्शनसम्पन्नः कर्मभिर्न निबध्यते ।
दर्शनेन विहीनस्तु संसारं प्रतिपद्यते ।।७४।।

—६ मनुस्मृति ।

'सम्यक्-दर्शन-संपन्न व्यक्ति कर्म बन्धन में नहीं बँधता तथा दर्शन-विहीन व्यक्ति संसार में फँस जाता है।'

अनुभूति दर्शन का आधार तथा कसौटी है। आध्यात्मिक अनुभूति संपन्न व्यक्ति जब अपनी अनुभूतियों को तर्कयुक्त ढंग से हमारे सामने रखते हैं, तथा हमें भी उन अनुभूतियों को प्राप्त करने का मार्ग बताते हैं तब वह हमारे लिए एक व्यावहारिक जीवन दर्शन हो जाता है। उस दर्शन के अनुसार यथावत उपयुक्त साधना करने पर हम भी उन आध्यात्मिक तत्त्वों की अनुभूति कर सकते हैं जिनका अनुभव उस दर्शन के प्रणेताओं ने किया था। यही दर्शन की व्यावहारिकता है।

दर्शन का क्षेत्र यद्यपि सर्वव्यापी है, तथापि वह जीवन और जगत् संबंधी कुछ मौलिक तथ्यों पर सर्व प्रथम विचार करता है। विवेचन की सुविधा के लिए हम इन मौलिक तत्त्वों को चार भागों में बाँट सकते हैं।

१. जीव—विशेषकर मनुष्य जीवन
२. जगत्—चराचर विश्व ब्रह्माण्ड
३. ईश्वर—जगत् कारण
४. मनुष्य (जीव) का भविष्य

इन चार तत्त्वों के संबंध में हमारी धारणा क्या है?

हमारी मान्यताएँ क्या हैं ? इसी बात पर हमारा जीवन-दर्शन निर्भर करता है ।

जीवन तथा जगत् संबंधी इन मौलिक तत्वों पर अपने गहन अध्ययन तथा उच्च आध्यात्मिक अनुभूति के आधार पर स्वामी विवेकानन्द जी ने हमें एक सर्वांगीण पूर्ण व्यावहारिक जीवन-दर्शन दिया है। इस दर्शन का सम्यक् आचरण कर कोई भी व्यक्ति अपने जीवन में उन आध्यात्मिक अनुभवों को प्रत्यक्ष कर सकता है जिनका प्रतिपादन स्वामी जी ने अपने दर्शन में किया है ।

यहाँ हमें एक बात विशेष रूप से स्मरण रखनी होगी कि स्वामी जी को यह जीवन-दर्शन अपने गुरु श्रीरामकृष्णदेव से मिला था। भगवान श्रीरामकृष्ण स्वामी जी द्वारा प्रतिपादित जीवन दर्शन के मूर्त विग्रह थे। रामकृष्ण-विवेकानन्द जीवन दर्शन के मनीषी अध्येयताओं ने ठीक ही कहा है कि श्रीरामकृष्ण मानो इस महान जीवन-दर्शन के सूत्र हैं तथा स्वामी विवेकानन्द उन सूत्रों के भाष्य हैं।

मनुष्य

संसार में जितने भी सभ्य एवं उन्नत समाज हुए हैं, जितनी भी सभ्य तथा उन्नत जातियाँ हुई हैं, तथा जिनके वंशधर आज भी जीवित हैं; जिनकी सभ्यता और संस्कृति का आभास आज भी उनके वंशधरों में मिलता है, उन सभी जातियों का एक जीवन-दर्शन रहा है। मनुष्य जीवन का एक 'प्रयोजन' उन जातियों के दर्शनों ने उन्हें दिया है। भारत और चीन जैसे देश तथा चिरंजीवी हिन्दू और चीनी समाज इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं। इन दोनों देशों के महापुरुषों ने धर्म के रूप में अपने देशवासियों को एक ऐसा जीवन दर्शन दिया था जिसमें विभिन्न रूपों में मनुष्य की महानता तथा उसके अमरत्व की धारणा निहित थी । किन्तु इतना होते हुए भी समय-समय पर इन देशों में भी ऐसे लोग हुए तथा आज भी हैं जिन्होंने मनुष्य के उस दिव्य रूप की अवहेलना ही नहीं की वरन् उसे मिथ्या बताकर मनुष्य को केवल एक भौतिक पदार्थ ही माना। प्राचीन भारत में चार्वाक तथा आधुनिक चीन में माओवादी साम्यवादी इसके उदाहरण हैं।

मनुष्य का स्वभाव ही ऐसा है कि वह असीम आनन्द असीम ज्ञान तथा अमरत्व चाहता है। इसी प्रयास में वह संसार के नाना प्रकार के भोगों को भोगना चाहता है तथा विविध उपलब्धियों के पीछे भागता फिरता है। जब तक उसका शरीर और मन स्वस्थ और समर्थ रहता है, तथा परिस्थितियाँ कम अधिक मात्रा में अनुकूल रहती हैं, तब तक वह तात्कालिक सुख तथा आपात् उपलब्धियों में भूला रहता है; उसका ध्यान इस ओर नहीं जाता कि यह सब सुख और उपलब्धियाँ स्थायी नहीं हैं, अनंत नहीं हैं। किन्तु संसार में ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं है जिसके जीवन में कभी प्रतिकूलता न आये जिसे कभी असफलता का सामना न करना पड़े, जिसे कभी किसी आत्मीय के विछोह की मृत्यु का दारुण दुख न भोगना पड़े। जीवन संग्राम के कोलाहल में कुछ समय के लिए व्यक्ति भले ही भूला रहे किन्तु जब कभी हमारे किसी स्वजन संबंधी की मृत्यु होती है, या हमारे हृदय में चिर पोषित कोई स्वप्न अकस्मात् भंग हो जाता है तब हमारे मन में थोड़ी ही देर के लिए क्यों न हो यह प्रश्न उठता है—क्या मृत्यु के साथ सभी समाप्त हो जाता है ? सब कुछ मिट जाता है ? मृत्यु के पश्चात् क्या होता है ? देह के नष्ट हो जाने के पश्चात् भी क्या कुछ ऐसा रह जाता है जिसका विनाश नहीं होता ? जो मृत्यु के अधीन नहीं है ?

अनादिकाल से ये प्रश्न मनुष्य के मन में उठते रहे हैं; उसके मन को मथते रहे हैं। विभिन्न देश कालों में इनके भिन्न-भिन्न उत्तर दिये जाते रहे हैं। इन उत्तरों के आधार पर जीवन दर्शन बने तथा उन दर्शनों पर समाज की रचना हुई।

स्वामी जी ने अपने समय के पूर्वीय तथा पश्चिमी जीवन दर्शनों का गहन अध्ययन किया था। उन्होंने उस पर चितन तथा मनन किया और तब उन्होंने इन मौलिक प्रश्नों के दो संभावित उत्तरों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया। वे कहते हैं "उपर्युक्त प्रश्न के दो उत्तर हैं। एक है शून्यवादियों की भाँति विश्वास करना कि सब कुछ शून्य है, हम कुछ भी नहीं जान सकते—भूत, भविष्य या वर्त्तमान के संबंध में कुछ भी नहीं जान

सकते।.................यह तो बस ऐसा ही हुआ, जैसे माता पिता के अस्तित्व को अस्वीकार करते हुए संतान के अस्तित्व को स्वीकार करना। दोनों समान रूप से युक्ति संगत है। भूत और भविष्य को अस्वीकार करने का अर्थ है वर्त्तमान को भी अस्वीकार करना। यह है शून्यवादियों का मत। पर मैंने आज तक ऐसा एक भी मनुष्य नही देखा, जो एक मुहूर्त के लिए भी शून्यवादी हो सके—मुख से कहना अवश्य वड़ा सरल है।[2]

दूसरा उत्तर यह है कि "सत्य की खोज करो। इस नित्य परिवर्तनशील नश्वर जगत् में क्या सत्य है इसकी खोज करो।"

स्वामी जी ने स्वयं इस दूसरे प्रश्न का उत्तर खोजा तथा उन्होंने सत्य का साक्षात्कार किया, उसका अनुभव किया। किन्तु सत्य के साक्षात्कार से कृतकृत्य हो वे शुकदेव की भांति शांत तथा मौन होकर निर्विकल्प समाधि में डूबे न रहे अपितु शाक्य सिंह भगवान बुद्ध की भाँति बहुजन हिताय बहुजन सुखाय स्वानुभवलब्ध इस अमृत प्रदायी जीवन दर्शन के प्रचार प्रसार में अपने जीवन की आहुति दे दी।

स्वामी जी ने मनुष्य के स्वरूप के संवंध में जिन शाश्वत सत्यों का उद्घाटन किया है उन्हें संक्षेप में इस प्रकार रखा जा सकता है।

(१) संसार के सभी धर्मों में यह मान्यता पायी जाती है कि मनुष्य यह स्थूल देहमात्र नहीं है। इस स्थूल देह के पीछे एक और सत्ता है जिसका विनाश स्थूल शरीर के साथ नहीं होता। इस शरीर के विनाश के पश्चात् भी उसका अस्तित्व बना रहता है।[3]

(२) मनुष्य केवल एक मांसल जन्तु (Molluse) का क्रम विकास मात्र नहीं हो सकता। स्वामी जी कहते हैं—"प्रत्येक गति चक्राकार में होती है। आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से देखने पर भी यह दिखेगा कि मनुष्य केवल क्रम विकास का परिणाम है यह बात सिद्ध नहीं होती। क्रम विकास कहने के साथ ही साथ क्रम संकोच की प्रक्रिया को भी मानना पड़ेगा। असत् (कुछ नहीं) से कभी भी सत् (कुछ) की उत्पत्ति नहीं हो सकती। यदि मानव, पूर्ण मानव—बुद्धमानव—ईसा मानव एक क्षुद्र मांसल जन्तु का ही क्रमविकास हो तब तो इस क्षुद्र जन्तु को भी क्रम संकुचित बुद्ध कहना पड़ेगा। यदि ऐसा न हो तो ये सब महापुरुष फिर कहाँ से उत्पन्न हुए? असत से तो कभी सत् की उत्पत्ति नहीं होती।"[4]

न असतः विद्यते भावः न अभावः विद्यते सतः

गीता के इस शाश्वत सिद्धान्त के आधार पर स्वामीजी ने बहुचर्चित, बहुमान्य डार्विन के विकासवाद के सिद्धान्त की एक मौलिक भूल की ओर विश्व के विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया है।

वट के बीज में विशाल वट वृक्ष सन्निहित होता है जो अनुकूल परिवेश, खाद, जल आदि पा कर यथा समय विशाल वृक्ष के रूप में विकसित हो उठता है। यदि उस बीज में वृक्ष सन्निहित न होता तो कितना भी उत्तम परिवेश, खाद, जल आदि मिलकर कभी भी उस बीज को वृक्ष के रूप में विकसित न कर पाते। क्योंकि यदि ऐसा संभव होता तो रेत का कण बो देने पर भी वह वृक्ष उत्पन्न हो जाता, किन्तु वैसा होता नहीं है।

इसी आधार पर स्वामी जी ने हमें यह विज्ञान सम्मत सिद्धान्त दिया है कि जीवाणु (Protoplasm) में पूर्ण मानव, पूर्णपुरुष, अव्यक्त अवस्था में विद्यमान है। इसी अव्यक्त शक्ति को वेदान्त में ब्रह्म कहा गया है। यह ब्रह्म ही जीवन की विभिन्न अवस्थाओं, योनियों, आदि से होकर क्रमशः स्वयं को अधिकाधिक अभिव्यक्त करने की चेष्टा कर रहा है। इस सत्य को जान कर यदि व्यक्ति ज्ञान पूर्वक, विधिवत अपने अन्तर्निहित इस अव्यक्त ब्रह्म को व्यक्त करने की चेष्टा करे तो वह अपनी जीवन यात्रा को अत्यन्त सुखद बना, प्राकृतिक विकास की तुलना में अत्यन्त शीघ्र ही पूर्ण आत्मविकास के चरम लक्ष्य पर पहुंच सकता है। स्वामी विवेकानन्दजी का जीवन दर्शन हमें यही करने का आह्वान करता है—उत्तिष्ठत! जाग्रत! प्राप्य वरान्निवोधत !!!

(३) तत्वमसि :—"इस बहुत्वपूर्ण जगत में जो उस एक को, इस परिवर्तनशील जगत् में जो उस अपरिवर्तन-

शील को अपनी आत्मा की आत्मा के रूप में देखता है, अपना स्वरूप समझता है वही मुक्त है; वही आनन्दमय है, उसीने लक्ष्य की प्राप्ति की है। अतएव, जान लो कि तुम वही हो, तुम ही जगत के ईश्वर हो 'तत्वमसि'।"

"पर्वत की भाँति अटल रहो; तुम अविनाशी हो। तुम आत्मा हो। तुम्ही जगत् के ईश्वर हो, कहो शिवोऽहं ! शिवोऽहं !! मैं संपूर्ण सच्चिदानन्द हूँ।"[5]

मनुष्य का सच्चा स्वरूप स्वामी विवेकानन्दजी के दर्शन की धुरी है। मनुष्य तथा मनुष्य जीवन के संबंध में स्वामी जी ने अनेक स्थानों पर अनेक बातें कही हैं। मनुष्य की गरिमा और महिमा उनके जीवन दर्शन का एक आधार स्तम्भ है। ऊपर के संक्षिप्त विवेचन में उसका केवल संकेत मात्र किया गया है।

स्वामी जी ने मनुष्य के नित्य मुक्त, शुद्ध-बुद्ध, चैतन्य स्वरूप का साक्षात्कार किया था। आत्मा और परमात्मा के ऐक्य की अनुभूति की थी तथा अद्वैत वेदान्त के चरम सत्य 'जीव ही ब्रह्म है' इस पर दृढ़ रूप से प्रतिष्ठित हो कर घोषणा की थी—"पिंजड़े को तोड़ डालनेवाले सिंह की भाँति तुम अपने बंधन तोड़ कर सदा के लिए मुक्त हो जाओ। तुम्हें किसका भय है। तुम्हें कौन बाँध कर रख सकता है? केवल अज्ञान और भ्रम, अन्य कुछ भी तुम्हें नहीं बाँध सकता। तुम शुद्ध स्वरूप हो, नित्यानन्दमय हो।"[6]

स्वयं के संबंध में मनुष्य की धारणा उसके जीवन को बहुत गहराई से प्रभावित करती है। यदि मनुष्य की यह धारणा हो कि वह केवल हाड़ मांस का एक पुतला मात्र है, वह केवल शरीर ही है तो उसका जीवन भोग परायण होकर रहेगा। वह चाहे या न चाहे उसे अपने मन और इन्द्रियों का दास हो कर रहना पड़ेगा। इस प्रकार उसका जीवन तृष्ण तृप्ति की एक अंधी दौड़ होगी जिसका परिणाम अशेष यंत्रणा और अशांति ही होगी।

किन्तु, यदि सत्य की अनुभूति पर प्रतिष्ठित स्वामी विवेकानन्द जी के शाश्वत दर्शन पर विश्वास कर मनुष्य अपने संबंध में यह धारणा कर ले कि वह नित्य मुक्त शुद्ध, बुद्ध चैतन्य आत्मा है, वह वस्तुतः परमात्म स्वरूप ही है तो उसी क्षण से उसके जीवन में उन्नति और महानता का द्वार खुल जायेगा। फिर वह व्यक्ति चाहे कितनी भी हीन दशा में क्यों न हो यदि वह दिन पर दिन, सप्ताह पर सप्ताह, मास पर मास, वर्ष पर वर्ष इस धारणा को अपने मन में दृढ़ से दृढ़तर करता रहे तो निश्चय ही एक न एक दिन वह सभी प्रकार की दुर्बलताओं को जीत कर उन्नति और महानता के शिखर पर पहुँच जायेगा।

जगत्

दूसरा तत्व जो किसी भी सम्यक् जीवन दर्शन के लिए आवश्यक है—वह है जगत् संबंधी धारणा। संसार के जिन भी दर्शनों ने इस इन्द्रिय गम्य पंथ भौतिक जगत को सत्य माना है उन्होंने अन्ततः इस भौतिक जगत की ही उपासना की है—यह जगत् ही उनके लिए सर्वस्व रहा है अतः इस जगत् में उपलब्ध सुख सामग्रियों का संग्रह तथा उपभोग ही उनके जीवन का प्रयोजन रहा है। भौतिक समृद्धि ही उनका चरम लक्ष्य रहा है। भौतिक समृद्धि के लिए भौतिक शक्तियों का होना आवश्यक है, इसलिए इन्द्रियगम्य जगत् को ही सत्य मानने वाले लोगों ने अनादि काल से बाह्य प्रकृति को जीतकर उसकी उपासना कर असीम भौतिक शक्तियाँ प्राप्त करने का प्रयत्न किया है। पौराणिक युग के हिरणकशिपु, इतिहास युग के रावण तथा उसके सहयोगी राक्षसगण, और हमारे युग के मदांध भौतिकवादी देश इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। स्वामी जी के समय में भी तत्कालीन वैज्ञानिक आविष्कारों से चमत्कृत लोगों का एक बहुत बड़ा दल था जो इस इन्द्रियगम्य जगत् को ही सत्य मानता था; उसी के अनुसार इन लोगों का जीवन भी पूर्णतः भौतिकवादी हो गया था।

स्वामी विवेकानन्द आधुनिक युग के आचार्य हो कर आये थे। आधुनिक युग विज्ञान प्रधान युग है; आज कार्य कारण श्रृंखला के आधार पर ही सभी वस्तुओं की परीक्षा की जाती है। स्वामी जी विज्ञान के भौलिक तत्वों से भली भाँति परिचित थे। अतः जगत् की मीमांसा करने के लिए उन्होंने जगत् के बाह्य रूप को

भेद कर उसके मूल में जाने की चेष्टा की जिसमें वे पूर्णतः सफल हुए।

युगाचार्य विवेकानन्द जी की यह एक विशेषता रही है कि उन्होंने जटिल से जटिल दार्शनिक तत्त्वों को बड़ी ही सरल भाषा में जन साधारण के सामने रखा। कार्य-कारण की मीमांसा एक जटिल दार्शनिक विषय है। स्वामी जी ने उसे कितने सहज ढंग से हमारे सामने रखा है यह निम्न उदाहरण से स्पष्ट है :—वे कहते हैं—"अब हम यह विचार करेंगे कि हम प्रश्न क्यों करते हैं? एक पत्थर गिरा और हमने प्रश्न किया—इसके गिरने का क्या कारण है? इस प्रश्न का औचित्य अथवा इसकी संभावना इस अनुमान अथवा धारणा पर निर्भर है कि जो कुछ होता है उसके पूर्व और कुछ हो चुका है।—·········क्योंकि जब हम प्रश्न करते हैं कि यह घटना क्यों हुई, तब हम यह मान लेते हैं कि सभी वस्तुओं का सभी घटनाओं का एक कारण क्यों रहता ही है—अर्थात् उसके घटने के पहले कुछ अवश्य हुआ होगा। इस पूर्व-वर्तिता और परवर्तिता को ही निमित्त अथवा कार्य कारण भाव कहते हैं।"[7]

जगत् के संबंध में भी हमें यह मौलिक तथ्य स्मरण रखना होगा कि जगत् की उत्पत्ति भी शून्य से नहीं हुई है। इस जड़ जगत की उत्पत्ति का एक कारण अवश्य है तथा वह कारण स्वयं जड़ नहीं है क्योंकि संसार की कार्यकारण शृंखला हमें यह बताती है कि जड़ में उत्पादन क्षमता नहीं है। एक जड़ पदार्थ दूसरा कोई पदार्थ उत्पन्न नहीं कर सकता।

कारण सूक्ष्म कार्य स्थूल :—सृष्टि का विश्लेषण करते हुए स्वामी जी ने हमें बताया है कि प्रत्येक पदार्थ किसी सूक्ष्म आकार से प्रारंभ होकर तब स्थूल रूप में प्रकट होता है। वे कहते हैं—"प्रत्येक पदार्थ मानो किसी बीज से किसी मूल उत्पादन से किसी सूक्ष्म आकार से आरंभ होता है और स्थूल से स्थूलतर होता जाता है। कुछ समय तक ऐसा ही चलता है, और अन्त में फिर उसी सूक्ष्म रूप में उसका लय हो जाता है।"[8]

इस प्रकार हम देखते हैं कि जगत् का यह स्थूल दृश्य-रूप जगत् की व्याख्या के लिए, उसकी मीमांसा के लिए पर्याप्त नहीं है। जगत् जिस रूप में हमारे सामने उपस्थित है उसे उसी रूप में स्वीकार कर लेने पर हम जगत् तथा जीवन की मौलिक समस्याओं को कभी भी नहीं समझ पायेंगे और इस कारण जगत् तथा जीवन की समस्याओं के समाधान का हमारा सारा प्रयत्न व्यर्थ हो जायेगा।

कार्यकारण अभिन्न :—जगत् की व्याख्या करते हुए स्वामी जी ने एक और मौलिक सिद्धान्त की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है वह यह कि कार्य तथा कारण में कोई मौलिक भेद नहीं है। कारण ही कार्य-रूप में प्रकट होता है तथा कालांतर में पुनः वह कारण में लीन हो जाता है। अपने एक व्याख्यान में स्वामी जी कहते हैं—

"कार्य केवल कारण का रूपान्तर मात्र है। अतएव यह समस्त ब्रह्माण्ड शून्य में से नहीं उत्पन्न हो सकता। बिना किसी कारण के वह नहीं आ सकता; इतना ही नहीं, कारण ही कार्य के भीतर सूक्ष्म रूप से वर्त्तमान है।"

सृष्टि और प्रलय का चक्र :—हमने देखा कि शून्य से किसी वस्तु का जन्म नहीं हो सकता। सभी वस्तुओं का एक कारण होता है। हमने यह भी देखा कि कार्य स्थूल तथा कारण सूक्ष्म होता है। हम देखते हैं कि सभी वस्तुओं का नाश होता है। अब प्रश्न आता है कि नाश होने पर क्या ये वस्तुएँ सर्वथा विनष्ट होकर शून्य में विलीन हो जाती हैं? नहीं। स्थूल वस्तु के नाश का अर्थ है उसका अपने कारण सूक्ष्म में विलीन हो जाना। महर्षि कपिल कहते हैं—"नाशः कारणलयः" नाश का अर्थ है कारण में लय हो जाना। स्वामी जी बीज तथा वृक्ष का उदाहरण देकर यह तथ्य हमारे सामने रखते हैं—"बीज से वृक्ष होता है और वृक्ष पुनः बीज में चला जाता है। बस इसी तरह चल रहा है। इसका कहीं अन्त नहीं··········समस्त अस्तित्व जो हम देखते, सोचते, सुनते, और कल्पना करते हैं, जो कुछ हमारे ज्ञान की सीमा के भीतर है, यह सब इसी प्रकार चल रहा है, ठीक जैसे मनुष्य के शरीर में श्वास प्रश्वास। अतएव समस्त सृष्टि इसी प्रकार चल रही है··········समस्त

ब्रह्माण्ड समप्रणाली होने के कारण, सर्वत्र एक ही नियम लागू होगा। अतएव हम देखते हैं कि समस्त ब्रह्माण्ड एक समय अपने कारण में लय होने को बाध्य है।"[10]

अपने कारण में लय हो कर यह ब्रह्माण्ड कुछ काल तक उसी अवस्था में रहता है—मानो सुप्त हो। जिस प्रकार बीज बोते ही तुरंत वृक्ष नहीं हो जाता, सूक्ष्म से स्थूल रूप में व्यक्त होने में समय लगता है। किंतु उस समय भी अव्यक्त सूक्ष्म कार्य व्यस्त रहता है। इसी विश्राम या सुप्त अवस्था का नाम प्रलय है। प्रलय के पश्चात् पुनः सृष्टि होती है। अतः ऐसा नहीं कि यह पृथ्वी या विश्व ब्रह्माण्ड पहली बार उत्पन्न हुआ है तथा विनष्ट होने पर सदैव के लिए समाप्त हो जाएगा। सृष्टि-प्रलय का यह क्रम अनादिकाल से चल रहा है तथा अनंतकाल तक चलता रहेगा।

आदि अन्त समान है :—

हमने देखा कि प्रलय की अवस्था में यह ब्रह्माण्ड अपने सूक्ष्म कारण में विलीन हो जाता है। तब यह प्रश्न उठता है कि यह सूक्ष्म कारण क्या है? किसी वस्तु का आदि जान लिया जाय तो उसका अंत भी जाना जा सकता है। उसी प्रकार यदि अन्त जान लिया जाय तो आदि भी जाना जा सकता है। आधुनिक क्रम विकास-वाद हमें बताता है कि सृष्टि विकास के क्रम में चैतन्य (Consciousness) अंतिम वस्तु है। अब कार्य कारण शृंखला के अनुसार हम कह सकते हैं कि यदि चैतन्य अंतिम वस्तु है तो आदि में भी चैतन्य रहा होगा। अभी यदि वह व्यक्त रूप में है तो आदि में वह अव्यक्त रूप में था किन्तु था, अवश्य ही। इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए स्वामी जी हमें बताते हैं :—

"जड़वादी कह सकते हैं अच्छा ठीक है, पर मनुष्य के जन्म के पहिले तो लाखों वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। उस समय तो ज्ञान का कोई अस्तित्व नहीं था। इस पर हमारा उत्तर यह है—हाँ व्यक्त रूप में चैतन्य नहीं था, लेकिन अव्यक्त रूप में यह अवश्य ही विद्यमान था, और यह तो एक मानी हुई बात है कि पूर्ण मानव रूप में प्रकाशित चैतन्य ही सृष्टि का अन्त है। तो फिर आदि क्या होगा? आदि भी चैतन्य ही होगा। पहिले वह चैतन्य क्रम संकुचित होता है अन्त में वही फिर क्रम विकसित होता है।"[11]

अतः हम पाते हैं कि सृष्टि का आदि और अन्त समान हैं। एक ही वस्तु है—एक ही तत्त्व है।

सर्वं ब्रह्ममयं जगत् :—

विश्व के विचारकों, दार्शनिकों और धार्मिक व्यक्तियों के मध्य सहस्रों वर्षों से यह विवाद चल रहा है कि अखंड अद्वय चैतन्य कैसे इन नाना रूपों में प्रकाशित हो रहा है। क्या वह खंडित हो कर नाना रूपों में प्रकाशित हो रहा है? या उसमें परिवर्त्तन घटित हुआ है? यह विषय आज भी मीमांसा का प्रश्न बना हुआ है। किन्तु विवर्त्तवाद, परिणामवाद, लीला आदि विभिन्न वादों और विचारों के मध्य स्वामी विवेकानन्द द्वारा दी गयी मीमांसा आज के वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित तथा पूर्णतः तर्क-सम्मत है, और इसीकारण यह मीमांसा अत्यन्त समीचीन तथा बुद्धिवादी विचारशील लोगों में बहुमान्य है। स्वामी जी ने असंदिग्ध शब्दों में घोषणा की है "ब्रह्म जगत् है" (ज्ञानयोग, पृष्ठ १४०)। इसका स्पष्टीकरण करते हुए उन्होंने एक रेखा चित्र के माध्यम से हमें समझाया है।

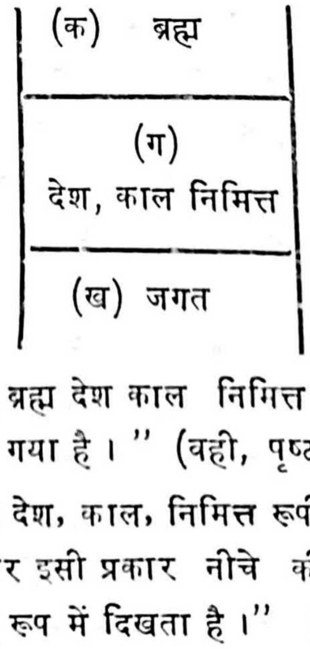

(ज्ञान योग, पृष्ठ १४०)

"यह ब्रह्म देश काल निमित्त में से होकर आने से जगत् बन गया है।" (वही, पृष्ठ १४०)

"हम देश, काल, निमित्त रूपी काँच से ब्रह्म को देख रहे हैं, और इसी प्रकार नीचे की ओर देखने पर ब्रह्म हमें जगत् रूप में दिखता है।" (वही, पृष्ठ १४०)

यहाँ हमें स्मरण रखना होगा कि जगत् से स्वामीजी का तात्पर्य केवल जड़ जगत ही नहीं है, सूक्ष्म तथा आध्यात्मिक जगत भी इसके अन्तर्गत हैं।

जगत के संबंध में स्वामी जी के विचारों का अध्ययन करने पर हम पाते हैं कि आपात् प्रतीयमान जगत न तो भौतिकवादियों की धारणानुसार इस भौतिक रूप में ही सत्य है और न ही अजातवाद के अनुसार त्रिकाल मिथ्या है और न ही मायावाद के अनुसार स्वप्नवत मिथ्या है। इसके विपरीत स्वामी जी ने हमें जगत् के संबंध में एक विधेयात्मक यथार्थवादी दृष्टिकोण दिया है, जिसके अनुसार एक ही अखंड चैतन्य एक अवस्था विशेष में जगत् के रूप में प्रकाशित हो रहा है। स्वामीजी के ही शब्दों में "तो हमने अब क्या देखा? यही कि जड़ शक्ति, मन, चैतन्य या दूसरे नामों से परिचित विभिन्न जागतिक शक्तियाँ उस विश्व व्यापी चैतन्य की ही अभिव्यक्ति है। जो कुछ आप देखते हैं, सुनते हैं या अनुभव करते हैं, सब उसी की सृष्टि है—ठीक कहें तो उसी का परिणाम है। और भी ठीक कहें तो, सब कुछ स्वयं प्रभु ही हैं।"[12]

जगत संबंधी यह धारणा हमारे व्यावहारिक जीवन-दर्शन को एक दृढ़ आधार प्रदान करती है।

ईश्वर

किसी भी सार्थक व्यावहारिक जीवन दर्शन की सफलता एवं व्यावहारिकता ईश्वर संबंधी उसकी धारणा पर पूर्णतः नहीं तो अधिकांश में अवश्य ही निर्भर करती है। विश्व के इतिहास पर एक विहंगम दृष्टि डालने पर भी हम यह स्पष्ट देख पाते हैं कि जिन धर्मों तथा दर्शनों ने ईश्वर के प्रति एकांगी या पूर्वाग्रही दृष्टिकोण रखा है उनके द्वारा दिये गये जीवन दर्शन से भले ही मानव समाज के एक समूह विशेष का कुछ लाभ हुआ हो, किन्तु कालांतर में अधिकांश मानव समाज को उससे लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक हुई है। स्वामी जी ने इतिहास का भी गहन अध्ययन किया था अतः उनकी तीक्ष्ण दृष्टि में यह दोष छिपा न रहा। इसलिए उन्होंने ईश्वर संबंधी धारणाओं का अध्ययन किया, उन पर विचार किया, तथा अन्त में अपने महान गुरु श्रीरामकृष्ण देव जी के निर्देशानुसार साधन कर ईश्वर की प्रत्यक्ष अनुभूति की और तब उन्होंने जगत् कल्याणकारी ईश्वर संबंधी धारणाएँ हमें दीं।

उपासक के साथ उपास्य की भी उन्नति :—

उपासक के साथ उपास्य की भी क्रमोन्नति का सिद्धान्त देकर स्वामी जी ने ईश्वर संबंधी हमारी धारणा को एक बहुआयामी तथा अत्यन्त उदार भाव दिया है। 'माया और ईश्वर धारणा का क्रम विकास' नामक अपने व्याख्यान में विभिन्न जातियों में ईश्वर की धारणा की चर्चा करते हुए स्वामी जी कहते हैं—"प्राचीन काल की सामाजिक अवस्था आज नहीं रही। जिस प्रकार प्राचीन यहूदी आज के तीक्ष्णबुद्धि यहूदी में परिणत हो गया है, जिस प्रकार प्राचीन आर्य आज के बुद्धिमान हिन्दू में परिणित हो गया है उसी प्रकार जिहोवा की और अन्य देवताओं की भी क्रमोन्नति हुई है। हम इतनी ही भूल करते हैं कि हम उपासक की क्रमोन्नति तो स्वीकार करते हैं परन्तु ईश्वर की नहीं। हम उपासकों को जिस प्रकार उन्नति का श्रेय देते हैं उसी प्रकार ईश्वर को नहीं देना चाहते।"[13]

हम कुछ भाव विशेष को लेकर साधना करते हैं। ठीक-ठीक साधना करने पर यथा समय हमारे वे भाव परिपुष्ट हो कर उन्नत तथा विकसित होते हैं, उसके साथ-साथ हमारी चेतना का भी विकास होता है, और चेतना के विकास के साथ-साथ हमारी ईश्वर संबंधी धारणा भी सुस्पष्ट तथा उन्नत होती जाती है। कुछ लोग ईश्वर विकास संबंधी इस धारणा पर आश्चर्य करते हैं। उसके उत्तर में स्वामी जी कहते हैं—

"आप शायद यह आश्चर्य करें कि देवता और ईश्वर की भी कहीं उन्नति होती है? तो इस पर ऐसा भी कहा जा सकता है कि क्या मनुष्य की भी उन्नति होती है?··· इस मनुष्य के भीतर जो प्रकृत मनुष्य है वह अचल, अपरिणामी, शुद्ध और नित्य मुक्त है। जिस प्रकार यह मनुष्य उस असल मनुष्य की छाया मात्र है, उसी प्रकार हमारी ईश्वर संबंधी धारणाएँ केवल हमारे मन की सृष्टि हैं। वे उस प्रकृत ईश्वर का आंशिक प्रकाश आभास मात्र हैं। समस्त आंशिक प्रकाशों के पीछे प्रकृत ईश्वर विद्यमान हैं और वह नित्य मुक्त शुद्ध अपरिणामी है।"[14]

इन कतिपय वाक्यों में स्वामी जी ने ईश्वर संबंधी धारणाओं को लेकर होने वाले झगड़ों का विश्वजनीन समाधान सदा के लिए दे दिया है। उनके द्वारा दिये

गये ईश्वर धारणा संबंधी इन सिद्धान्तों को एकबार भली भाँति समझ लेने पर फिर मनुष्य किसी का विरोध नहीं करता, किसी से झगड़ा नहीं करता क्योंकि वह जानता है कि किसी भी व्यक्ति या जाति की ईश्वर संबंधी धारणा उस व्यक्ति और जाति की मानसिक उन्नति तथा चेतना के विकास पर निर्भर करती है। किन्तु उसके साथ ही वह यह भी जानता है कि उस ईश्वर धारणा के पीछे अखंड अद्वय नित्य शुद्ध अपरिणामी ईश्वर विराजमान हैं। ईश्वर धारणा के रूप में उनका ही प्रकाश उस व्यक्ति और जाति के भीतर से फूट रहा है तथा विकास के क्रम में एक ऐसा अवसर अवश्य आयेगा जब कि वह व्यक्ति तथा जाति उच्चत्तम ईश्वर धारणा को प्रकाशित करने में पूर्ण समर्थ होगी।

निर्गुण सगुण एक ही ईश्वर :—ईश्वर धारणा संबंधी मतभेद और झगड़ों का एक बहुत बड़ा कारण यह विवाद है कि ईश्वर निर्गुण हैं या सगुण ? वे निराकार हैं या साकार ? इस पचड़े में पड़कर लोग धर्म को भूल अपने अपने रूढ़ मतवादों की स्थापना और प्रतिष्ठा के लिए रक्तपात तक करने में नहीं हिचकते हैं। स्वामी जी ने असंदिग्ध शब्दों में इस समस्या का शाश्वत समाधान हमें दिया है। भक्ति योग पर दिये गये अपने एक व्याख्यान 'ईश्वर का दार्शनिक विवेचन' में स्वामी जी कहते हैं—"ईश्वर कौन हैं ?' 'जिससे विश्व का जन्म, स्थिति और प्रलय होता है वही ईश्वर है।' वह अनंत शुद्ध नित्य मुक्त सर्वशक्तिमान सर्वज्ञ परम कारुणिक और गुरुओं का भी गुरु है और सर्वोपरि वह ईश्वर अनिर्वचनीय प्रेम स्वरूप है। ये सारी परिभाषाएँ निश्चय ही सगुण ईश्वर की हैं। तो क्या ईश्वर दो हैं ? एक सच्चिदानन्द रूप, जिसे ज्ञानी नेति नेति कर के प्राप्त करता है और दूसरा भक्त का वह प्रेममय भगवान ? नहीं, वह सच्चिदानन्द ही प्रेममय भगवान है, वह सगुण और निर्गुण दोनों है। यह सदैव ध्यान में रखना चाहिए कि भक्त का उपास्य सगुण ईश्वर ब्रह्म से भिन्न अथवा पृथक नहीं है। सब कुछ वही एकमेव अद्वितीय ब्रह्म है।"[15]

सगुण निर्गुण ईश्वर दोनों आवश्यक :—बहुत बार यह प्रश्न उठता है कि जब सगुण तथा निर्गुण ईश्वर एक ही हैं तो क्यों न एकेश्वरवाद का ही प्रचार किया जाय तथा सभी को ईश्वर संबंधी एक ही धारणा दी जाय। ईश्वर के सगुण निर्गुण रूप को मानने वालों से भी यह भूल प्रायः हो जाया करती है। इस भूल की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हुए स्वामी जी कहते हैं :—हमारे पण्डितों की यह धारणा है कि इतने सम्प्रदायों में से एक सम्प्रदाय सत्य है, बाकी सब झूठे हैं, यद्यपि उन्होंने श्रुतियों में देखा है एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति—सत्ता एक ही है पर मुनियों ने भिन्न भिन्न नामों से उसका वर्णन किया है। ······भारत के कुछ थोड़े से पण्डितों को छोड़कर, मैं पण्डित शब्द से यथार्थ धार्मिक एवं ज्ञानी व्यक्तियों को लक्ष्य कर रहा हूँ।—हम सदा सर्वदा ही इस तत्त्व को भूल जाते हैं। हम इस महान तत्त्व को सदा भूल जाते हैं और तुम देखोगे अधिकांश पण्डित, लगभग ७८ फीसदी इस मत के पोषक हैं कि या तो अद्वैतवाद सत्य है अथवा विशिष्टाद्वैत अथवा द्वैतवाद।"[16]

स्वामी जी मनुष्य की प्रकृति के परम पारखी थे। उन्होंने अनुभव द्वारा यह जान लिया था कि भिन्न भिन्न प्रकृति के मनुष्यों को उनकी प्रकृति के अनुसार ईश्वर संबंधी भिन्न भिन्न धारणाओं की आवश्यकता है। इस तथ्य का प्रत्यक्ष अनुभव उन्होंने अपने महान गुरु श्री रामकृष्णदेव के जीवन में किया था। उनके जीवन का उदाहरण देते हुए वे हमें बताते हैं—"उनके जीवन की आलोचना करने से ही उभय मतों की आवश्यकता समझ में आ जाती है। वे गणित ज्योतिष के भूकेन्द्रिक (Geocentric) और सूर्यकेन्द्रिक (Haliocentric) मतों की तरह हैं। जब पहले पहल बालक को ज्योतिष की शिक्षा दी जाती है, तब उसे भूकेन्द्रिक मत से ही पहिले सिखाया जाता है, परन्तु जब वह ज्योतिष के सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्त्वों का अध्ययन करता है, तब सूर्यकेन्द्रिक मत की शिक्षा उसके लिए आवश्यक हो जाती है। तब वह ज्योतिष के तत्त्व पहले से और अच्छा समझता है।"[17]

संसार के अधिकांश लोग धर्म जीवन में बालक के ही समान हैं। आध्यात्मिक जीवन के उच्च तत्त्वों को सहसा समझ लेना उनके लिए संभव नहीं है; क्योंकि हमारा सारा ज्ञान, अनुभव आदि स्थूल भौतिक पदार्थों

तक ही सीमित रहता है, जबकि धार्मिक और आध्यात्मिक तत्त्व प्रमुखतः इन्द्रियातीत है। अतः साधारण व्यक्ति के लिए जो कि अभी पंचेन्द्रियों से होने वाले ज्ञान के अतिरिक्त और किसी ज्ञान की धारणा नहीं कर सकता उसके लिए सगुण साकार ईश्वर की धारणा, अर्थात् द्वैतवाद की नितान्त आवश्यकता है। उसके बिना उसका काम चल ही नहीं सकता। स्वामी जी ने प्रायः चेतावनी के स्वर में कहा है—"पंचेद्रिय में फँसा हुआ जीव स्वभावतः द्वैतवादी होता है। जबतक हम पंचेद्रिय में पड़े हैं, तब तक हम सगुण ईश्वर ही देख सकते हैं—सगुण ईश्वर के सिवा और दूसरा भाव हम नहीं देख सकते······ ······रमानुज कहते हैं "जब तक तुम अपने को देह, मन या जीव सोचोगे तब तक तुम्हारे ज्ञान की हर एक क्रिया में जीव जगत और इन दोनों के कारण स्वरूप वस्तु विशेष का ज्ञान रहेगा।"[18]

किन्तु द्वैतज्ञान आध्यात्मिक अनुभव की चरम अवस्था नहीं है। आध्यात्मिक ज्ञान तथा अनुभव की परम अवस्था तो अद्वैत ज्ञान ही है। इसी संदर्भ में स्वामी जी पुनः कहते हैं "परन्तु मनुष्य के जीवन में कभी कभी ऐसा भी समय आता है जब शरीर ज्ञान बिलकुल चला जाता है, जब मन भी क्रमशः सूक्ष्मानूसूक्ष्म होता हुआ प्रायः अन्तर्हित हो जाता है, जब देह बुद्धि में डाल देनेवाली भीति और दुर्बलता के सभी भाव मिट जाते हैं—तभी केवल तभी उस प्राचीन महान उपदेश की सत्यता समझ में आती है। वह उपदेश है :—

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।

निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः॥

जिसका मन साम्य भाव में अवस्थित है उन्होंने यहीं संसार को जीत लिया है। ब्रह्म निर्दोष सर्वत्र सम है, अतएव वे ब्रह्म ही में अवस्थित हैं।"

सम पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्।

न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततोयाति परां गतिम्॥

"सर्वत्र ईश्वर को समभाव से सर्वत्र अवस्थित देखकर वे आत्मा परमात्मा की हिंसा नहीं करते, अतएव परम गति को प्राप्त होते हैं।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वामी जी ने ईश्वर संबंधी एक ऐसी उदार तथा विशाल धारणा हमें दी है जो सार्वलौकिक एवं सार्वजनीन है तथा जिसे सभी धर्मानुयायी व्यक्ति अपनी अपनी आस्था, विश्वास एवं अधिकार के अनुसार ग्रहण कर सकते हैं।

मनुष्य का भविष्य

किसी भी जीवन दर्शन में भविष्य की धारणा इस बात पर निर्भर करती है कि उसमें ईश्वर, जीव तथा जगत संबंधी धारणा क्या है? यदि वह दर्शन भौतिकवादी है तो उसमें ईश्वर आत्मा आदि तत्त्वों के लिए कोई स्थान नहीं है। इन्द्रियगम्य भौतिक जगत ही उस दर्शन का एकमात्र सत्य है और क्योंकि सभी भौतिक वस्तुएँ किसी एक निश्चित समय में उत्पन्न हुई हैं अतः भौतिक नियमों के अनुसार ही किसी एक निश्चत समय में उनका विनाश भी अवश्य होगा अतः भौतिकवादी जीवन दर्शन का भविष्य विनाश—समूल विनाश ही है। वहाँ विनाश अंधकार के अतिरिक्त और किसी भविष्य की आशा नहीं है।

किन्तु जिन दर्शनों में इस भौतिक जगत के पीछे एक चैतन्य सत्ता की धारणा की गयी है, उसका साक्षात्कार किया गया है उनमें मनुष्य तथा जगत का भविष्य अंधकारमय विनाश न होकर एक शाश्वत अखण्ड प्रकाश स्वरूप चैतन्य सत्ता की अनुभूति तथा अमरत्व है। स्वामी विवेकानन्द जी ने हमें एक ऐसा ही जीवन दर्शन दिया है। उनके द्वारा प्रणीत दर्शन विधेयात्मक तथा आशावादी है।

हम स्वयं अपने भाग्य विधाता हैं :—भविष्य का प्रश्न तभी उठता है जबकि हमें स्वाधीनता प्राप्त हो। जो स्वाधीन नहीं वह अपने भविष्य का निर्णय कैसे कर सकता है? उसके भविष्य का निर्णय तो वही सत्ता कर सकती है जिसके कि वह आधीन है। विश्व के बहुत से धर्म तथा दर्शनों की यह धारणा है कि मनुष्य नितान्त पराधीन है। एक सर्वतंत्र स्वतंत्र ऐसी सत्ता है जिसे गॉड, अल्ला, मसीहा भगवान आदि जो भी कहें, वही मनुष्य

का भाग्य निर्माता है। उसी की इच्छा से मनुष्य सुखी दुखी, अच्छा, बुरा आदि होता है। उसके अपने हाथ में कुछ नहीं है। इस प्रकार की धारणा मनुष्य को निरीह और तुच्छ बना देती है। वह अपने भविष्य के प्रति पर-मुखापेक्षी हो जाता है। स्वामी विवेकानन्द के जीवन-दर्शन में ऐसे किसी भाव को किंचित् भी स्थान नहीं है। नरकेसरी विवेकानन्द ने स्व प्रयत्न से महान पुरुषार्थ द्वारा सभी कठिनाइयों, बाधा विघ्नों आदि को जीत कर स्वयं के जीवन को परमात्मा की अभिव्यक्ति का श्रेष्ठ उपकरण बनाया था। मनुष्य जीवन में संभाव्य पर-मोत्कृष्ट शक्ति उनके पूत जीवन में पूर्णरूप से विकसित तथा प्रकट हुई थी। अपने जीवन के निर्माता वे स्वयं थे और इसीलिए उन्होंने मानव मात्र का आह्वान कर वज्र दृढ़ शब्दों में कहा—'हम स्वयं अपने भाग्य के विधाता हैं। हमारा भाग्य यदि खोता है तो भी कोई दूसरा दोषी नहीं है; और यदि हमारे भाग्य अच्छे हों तो भी कोई दूसरा प्रशंसा का पात्र नहीं। वायु सर्वदा बह रही है। जिन जहाजों के पाल खुले रहते हैं, वायु उन्हीं का साथ देती है और वे आगे बढ़ जाते हैं। पर जिनके पाल नहीं खुले रहते उनपर वायु नहीं लगती। तो क्या यह बायु का दोष है? हममें कोई सुखी है तो कोई दुखी। यह क्या करुणा मय पिता का दोष है, जिनकी कृपावायु दिन रात बह रही है, जिनकी दया का अन्त नहीं है? हम स्वयं अपने भाग्य के निर्माता हैं।''[19]

स्वामीजी द्वारा दिया गया यह जीवन-दर्शन मनुष्य को भाग्यवादी और अकर्मण्य होने से बचाता है। यह मनुष्य को प्रेरणा देता है—उससे कहता है भाई आज अपनी हीन दशा या दुख के कारण निराश न होओ। उठो, कमर कस कर पुन: काम में लग जाओ। तुम्हारे विगत कर्मों ने यदि तुम्हें दुखी और हीन बनाया है तो वर्तमान का सदुपयोग कर ऐसे शुभ कर्म करो जो तुम्हें भविष्य में सुखी और महान बना देंगे। तुम्हारा भाग्य तुम्हारी मुट्ठी में है। उठो और कर्म में जुट जाओ। उज्वल भविष्य तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है।

हमने देखा कि निर्णायक, स्वाधीनता है। अब देखें कि स्वाधीनता का तत्पर्य क्या है? स्वाधीनता का तात्पर्य है अपने ऊपर उत्तरदायित्व लेना। अपने भले-बुरे के लिये स्वयं को उत्तरदायी मानना। अपने पैरों पर खड़े होना। मनुष्य के भविष्य के लिए स्वामीजी ने यही शर्त रखी है। वे कहते हैं—"अतएव अपने दोषों के लिए तुम किसी को उत्तरदायी न समझो और अपने पैरों पर खड़े होने का प्रयत्न करो, सब कामों के लिए अपने को ही उत्तरदायी समझो। कहो कि जिन कष्टों को हम झेल रहे हैं वह हमारे ही किये हुए कर्मों के फल हैं।''[20]

सारी शक्ति हमारे भीतर है :—यह मान भी लेने पर कि हम अपने भाग्य के निर्माता हैं, कई बार हमारे मन में यह संदेह हो उठता है कि भाग्य निर्माण के लिए आवश्यक शक्ति हमें कहाँ से प्राप्त होगी? सहायता कहाँ से आयेगी? स्वामीजी हमें बताते हैं कि संपूर्ण शक्ति हमारे भीतर ही है। वे कहते हैं—'अतएव, उठो, साहसी बनो, वीर्यवान होओ। सब उत्तरदायित्व अपने कंधे पर लो तुम जो कुछ बल या सहायता चाहते हो, सब तुम्हारे ही भीतर विद्यमान है। अतएव इस ज्ञान रूप शक्ति के सहारे तुम बल प्राप्त करो और अपने हाथों अपना भविष्य गढ़ लो।..........अब तो सारा भविष्य तुम्हारे सामने पड़ा हुआ है।''[21]

अत: इस बात के लिए किसी प्रकार तर्क करने या प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं है कि मनुष्य का भविष्य उससे भिन्न अन्य किसी शक्ति के हाथों में है जो अपनी इच्छा से मनुष्य को सुखी या दुखी बनाये। अथवा उसे उन्नत या अवनत करे। मनुष्य का भविष्य उसके स्वयं के विचारों तथा कर्मों पर ही निर्भर करता है। अत: विवेक पूर्वक कर्म कर मनुष्य अपने भविष्य को उज्ज्वल तथा आनंदमय बना सकता है।

विश्व एक नीड़ हो उठेगा : संभावित अणुयुद्ध की महा विभीषिका से संत्रस्त, सत्ताधारियों के अत्याचार से पीड़ित, धनपतियों के शोषण से जर्जरित मानव के सामने एक दूसरा महान संदेहास्पद प्रश्न है– हमारे

वर्तमान राष्ट्रों का, हमारी पृथ्वी का भविष्य क्या होगा ?

त्रिकाल दर्शी ऋषि विवेकानन्द ने अपनी दिव्य दृष्टि से व्यष्टि और समष्टि दोनों के भविष्य को देखा था। तभी तो उन्होंने अपने एक प्रसिद्ध व्याख्यान 'बहुत्त्व में एकत्त्व' में स्पष्ट शब्दों में घोषणा की है "क्रमश: राष्ट्रों में परस्पर मेल होता जा रहा है, और मेरी यह दृढ़ धारणा है कि एक दिन ऐसा आयेगा जब राष्ट्र नामक कोई वस्तु नहीं रह जायेगी। राष्ट्र-राष्ट्र का भेद दूर हो जायेगा। हम चाहे इच्छा करें या न करें हम जिस एकत्त्व की ओर अग्रसर होते जा रहे हैं वह एक दिन प्रकाशित होगी ही।"[२२]

हमलोगों के मन में संदेह न रह जाय इसलिए अपनी इस भविष्यवाणी के पीछे जो शाश्वत सिद्धान्त है, जो दृढ़ आधार है वह भी स्वामीजी ने हमें बताया है। उसी व्याख्यान में वे आगे कहते हैं - —'वास्तव में हम सब के बीच भ्रातृ संबंध स्वाभाविक ही है, पर हम सब इस समय पृथक हो गये हैं। ऐसा समय अवश्य आयेगा ये सब विभिन्न भाव आकर मिल जायेंगे—प्रत्येक व्यक्ति वैज्ञानिक विषय के ही समान आध्यात्मिक विषयों में भी व्यवहार कुशल हो जायेगा और तब वह एकत्त्व, वह सम्मिलन जगत् में व्याप्त हो जायेगा। तब सारा जगत जीवन्मुक्त हो जायेगा। अपनी ईर्ष्या, घृणा, मेल और विरोध में से होते हुए हम उसी एक दिशा में चले जा रहे हैं।"[२३]

उपसंहार :—हमारा जीवन प्राय: टुकड़ों में बँटा होता है। हम जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में बहुत कुछ पाना चाहते हैं। साहित्य, संगीत, कला विज्ञान, दर्शन, धर्म आध्यात्मिकता और न जाने क्या क्या ? सभी क्षेत्रों में हम प्रवेश चाहते है; अधिकार चाहते हैं। इन सब के साथ-साथ संसार का सुख, भोग विलास, वैभव तो चाहते ही हैं। अधिकार लिप्सा हमारी नींद हराम किये रहती है। यही कारण है कि हम जीवन में चाह कर भी शांति लाभ नहीं कर पाते। सुखी और प्रसन्न रहने की चेष्टा करते हुए भी हम दुखी और अप्रसन्न ही रह जाते हैं। तथा अन्तत: हमारा जीवन हमारी भग्न आशा आकांक्षाओं का एक स्तूप मात्र रह जाता है जिसकी चोटी पर बैठे हम विवशता का जीवन इस लिए जीते हैं क्योंकि मृत्यु ने अभीतक हमारे गले में अपना फँदा नहीं डाला है।

जीवन को टुकड़ों में नही बाँटा जा सकता। हमारे जीवन का कुछ भाग आध्यात्मिक हो और कुछ सांसारिक ! ऐसा नहीं हो सकता। जीवन एक पूर्ण इकाई है और इसलिए उसे एक इकाई के रूप में ही जीना पड़ेगा। या तो हम भौतिकवादी, संसारी होंगे या आध्यात्मवादी, ईश्वर केन्द्रिक होंगे। दोनों एक साथ कभी नहीं चल सकते।

हमारी इस दुरवस्था के मूल में है स्वस्थ और सम्यक् जीवन दर्शन का अभाव। बिना स्वस्थ और सम्यक् जीवन दर्शन के हमारा जीवन कभी भी व्यवस्थित तथा उन्नत नहीं हो सकता। स्वस्थ जीवन दर्शन ही हमें जीवन का महान लक्ष्य प्रदान करता है और जब मनुष्य के जीवन का लक्ष्य महान होता है तब उसकी चेष्टाएँ, जीवनचर्या आदि भी उसी के अनुरूप होने लगती हैं तथा धीरे-धीरे उसका जीवन महानता की ओर बढ़ता जाता है।

बिना स्वस्थ और सम्यक् जीवन-दर्शन के हमारी निम्न वृत्तियों के नियंत्रण तथा दमन का हमारे पास कोई उपाय नहीं है। स्वस्थ और सम्यक् जीवन-दर्शन ही वह सशक्त प्रहरी है जो कि मनुष्य की पशु प्रवृत्तियों को नियंत्रित रख सकता है। और हम सभी यह जानते हैं कि अपनी हीन प्रवृत्तियों के नियंत्रण और दमन के बिना मनुष्य कभी भी महान होना तो दूर रहा साधारण भद्र व्यक्ति भी नहीं हो सकता। अत: व्यक्ति और समाज, व्यष्टि और समष्टि के कल्याण के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि समाज के सामने एक स्वस्थ एवं सम्यक् जीवन दर्शन रखा जाय। उसका प्रचार-प्रसार किया जाय; सर्वोपरि उसका जीवन में आचरण किया जाय। यही युग की महती आवश्यकता है।

विश्व मानव स्वामी विवेकानन्द जी द्वारा दिया गया जीवन दर्शन वह दिव्य सुधा है जो जाति, धर्म, लिंग, देश निरपेक्ष मानव मात्र के परम कल्याण में पूर्णत: समर्थ है। अत: विश्व का कल्याण इस जीवन दर्शन के प्रचार-प्रसार तथा आचरण में सन्निहित है।

१. Philosophy in India means that through which we see God; it is the rationale of religion. Inspired Talks, Sw· Vivekananda Page 110 Eleventh edition, pub R. K. Math, Madras.
२. ज्ञान योग, स्वामी विवेकानन्द, अष्टम संस्करण पृष्ठ ४१-४२ रामकृष्ण मठ नागपुर।
३. तुलना कीजिए, ज्ञान योग पृष्ठ ४२
४. ज्ञान योग पृष्ठ ४६-४७
५. ज्ञान योग पृ० २१८-९
६. वही पृ० २१८-९
७. ज्ञान योग १४२
८. वही पृ० १६६
९. ज्ञान योग पृ० १७०
१०. वही पृ० १६९
११. ज्ञान योग पृ० १७६
१२. ज्ञान योग पृ० १७८
१३. वही पृ० १०४-५
१४. ज्ञान योग पृ० १०५
१५. विवेकानन्द साहित्य, चतुर्थ खंड, तृतीय संस्करण पृ० ९
अद्वैत आश्रम ५ डेही एन्टाली रोड, कलकत्ता।
१६ भारत में विवेकानन्द पृ० २७३
षष्ठ संस्करण
१७. भारत में विवेकानन्द पृ० २७४
षष्ठ संस्करण
१८. वही ०पृ २७४
१९. ज्ञानयोग पृ० १९९
२० ज्ञान योग पृ० २०१
२१ वही पृ० २०१
२२. ज्ञान योग २४१
२३. वही २४२

सद्य प्रकाशित

नवीन प्रकाशित

स्वामी अभेदानन्द प्रणीत

मृत्यु के पार

मृत्यु होने पर मनुष्य कहाँ जाता है ? किस अवस्था में रहता है ? आत्मा का अस्तित्व है या नहीं परलोक में जीव का अवस्थान किस प्रकार रहता है ? यह सभी जिज्ञासा आदिम युग से ही मानव मन को आन्दोलित करती रही है। इन सभी की मीमांसा स्वामी अभेदानन्द महाराज ने अपने ग्रन्थ "मृत्यु के पार" में अपनी अभिज्ञता के आधार पर की है। इहलोक के निगूढ़ रहस्यों का परिचय देते हुए उपर्युक्त प्रश्नों का प्रामाणिक उत्तर इस ग्रन्थ में उन्होंने दिया है। मानव एवं प्राणीमात्र की आत्मा का विनाश नहीं है, किन्तु जीव भाव का क्रमविकास होता है एवं मृत्यु क्रम विकास की ही प्रतिछवि है। मनुष्य जन्म-मृत्यु के मध्य विचरण करते हुए ही परम रहस्यमय निज आत्मसत्ता की उपलब्धि करता है।

डिमाई साईज, पृष्ठ संख्या १६८ : मूल्य—बीस रुपया।

प्रकाशक :

श्रीरामकृष्ण वेदान्त मठ

१६-बा, राजाराजकृष्ण स्ट्रीट

कलकत्ता-७००००६

स्वामी विवेकानन्द का सन्देश

- टी० एल० वास्वानी

[साधु वास्वनी का जन्म २५ नवम्बर १८७९ ई० को सिंध प्रान्त के हैदराबाद नगर में हुआ था। एक प्रतिभावान छात्र के रूप में एम० ए० पास करने के बाद वे कलकत्ता के मेट्रोपोलिटन कॉलेज में इतिहास एवं अंग्रेजी के प्राध्यापक नियुक्त हुए। तीस वर्ष की आयु में वे बर्लिन (जर्मनी) में आयोजित विश्व धर्मसभा में भारत का प्रतिनिधित्व करने गये और तत्पश्चात् उन्होंने यूरोप के अन्य भागों में भी व्याख्यान देते हुए दौरा किया। बाद में वे दयाल सिंह कॉलेज, लाहौर और विक्टोरिया कॉलेज, कूचबिहार के प्रधानाचार्य रहे। चालीस वर्ष की आयु में उन्होंने देश और धर्म की सेवा के लिए नौकरी से त्यागपत्र दे दिया। तब से वे जनता एवं युवकों के बीच कार्यरत रहे। उन्होंने एक विशाल शिक्षा-संस्थान की योजना बनायी थी। स्वाधीनता के बाद भारत-विभाजन के फलस्वरूप उन्हें सिन्ध छोड़ना पड़ा और तब से वे आकर पूना में बस गये और वही उनके 'मीरा शिक्षा आन्दोलन' का केन्द्र हुआ। अपने विचारों के प्रसारार्थ उन्होंने वहाँ से अंग्रेजी और सिन्धी में कई पत्रिकाएं प्रारम्भ की थीं तथा अनेक छोटी-छोटी पुस्तिकाओं का सृजन किया था। ८७ वर्ष की सुदीर्घ आयु में १६ जनवरी १९६६ ई० को उन्होंने देहत्याग किया। पूना में उनके नाम पर साधु वास्वानी पथ और साधु वास्वानी चौक है। भारत सरकार ने उनके ९० वें जन्मदिन पर उनके सम्मान में एक डाक टिकट जारी किया।

प्रस्तुत लेख 'East and West' मासिक के सिरीज ४८ से लिया गया है। जिसके अनुवादक हैं—रामकृष्ण मठ, नागपुर में कार्यरत स्वामी विदेहात्मानन्द।—सं०]

सच कहा है, "एक महात्मा से सम्पर्क होना, जीवन की चरम उपलब्धि है।" श्रीरामकृष्ण के प्रिय शिष्य विवेकानन्द सचमुच ही एक महात्मा थे। उनका प्रत्यक्ष रूप से दर्शन पाने का सौभाग्य मेरा नहीं हुआ, क्योंकि वे कभी सिन्ध नहीं गये और जब मैं बाइस वर्ष का हुआ तो उनका देहावसान हो गया। परन्तु भारतवर्ष ने उन्हें सुना और उनकी गम्भीर एवं सरस वाणी यूरोप एवं अमेरिका के भी अनेक स्थानों में गृहित हुई। वे भारतीय पुनर्जागरण के अग्रदूतों में अन्यतम थे, हिन्दू संस्कृति एवं हिन्दू आदर्शों के दैवी व्याख्याता थे। भारतीय पुनर्जागरण से सम्बन्धित जो कुछ महान् नाम मेरे स्मृतिपटल पर उभर आते हैं, वे हैं - राममोहन राय, देवेन्द्रनाथ ठाकुर, केशवचन्द्र सेन, दयानन्द सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस, लोमान्यक तिलक, एनी बेसेण्ट, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, महात्मा गांधी, अरविन्द घोष और रमण महर्षि।

इमर्सन कहते हैं— "पृथ्वी बनी रहती है, तारे टिके रहते हैं, परन्तु मनुष्य कहाँ रह जाते हैं?" विवेकानन्द मनुष्यों के बीच एक मनुष्य थे। उन्होंने एक 'मनुष्य-बनानेवाले धर्म का प्रचार किया। यही कार्य आर्यसमाज के संस्थापक ऋषि दयानन्द ने भी किया, जिन्होंने वैदिक काल के ऋषियों के धर्म की पुनःप्रतिष्ठा की। विवेकानन्द की वाणी सुनिए—"हमें ऐसे धर्म की आवश्यता है, जिससे हम मनुष्य बन सकें। दुर्बल बनाने वाले समस्त सिद्धान्तों को त्याग दो और बलवान बनो।"

विवेकानन्द ने जिस आस्था का प्रचार किया, उसी को हमारे काल में महात्मा गांधी ने दुहराया। विवेकानन्द कहते हैं—"जो सभी जीवों की सेवा करता है, केवल

वही ईश्वर की सेवा करता है। ''आगामी पचास वर्षों के लिए हमारे मस्तिष्क से व्यर्थ के देवी-देवताओं के हट जाने में भी कोई हानि नहीं है।''''हमारा देश ही हमारा जाग्रत देवता है। सर्वत्र उसके हाथ हैं, सर्वत्र उसके पैर हैं और सर्वत्र उसके कान हैं। सबसे पहले उस विराट् की पूजा करो, जिसे तुम अपने चारों ओर देख रहे हो। ये मनुष्य और पशु, ये ही हमारे ईश्वर हैं। इनमें सबसे पहले पूज्य हैं हमारे अपने देशवासी।''

स्वामी विवेकानन्द ने पौरुष का सन्देश दिया, जो बारम्बार मेरे मन में भारत के ऋषियों एवं वीरों की स्मृति जगा देता है। एक समय था जब कि धर्मप्रचारक एवं शिक्षक भारत के गाँवों में भ्रमण करते हुए रामायण तथा महाभारत की गाथाएँ सुनाया करते थे और इस प्रकार जनसाधारण के मन में 'मनुष्यत्व' के आदर्श का माहात्म्य सुदृढ़ कर देते थे। रामायण श्रीराम के महान् कृत्यों का वर्णन छोड़कर और है ही क्या ? 'राम-राम' कहकर अभिवादन करने की हिन्दू प्रथा अपने एक वीर महापुरुष के प्रति हिन्दू जाति की श्रद्धांजलि ही तो है !

''हिन्दू-धर्म अव्यावहारिक है''- ऐसा कहने वाले समालोचक भ्रम में हैं। एक अंग्रेज समालोचक लिखता हैं, ''सभी सांसारिक विषयों से मन को खींच लेना, हिन्दू लोगों का एक धार्मिक-सिद्धात है।'' परन्तु नहीं ! हिन्दू दृष्टिकोण शक्तिपरक है। श्रीराम और श्रीकृष्ण दोनों ने ही कर्म का—कर्मठ जीवन का सन्देश दिया है। श्रीकृष्ण ने कहा—''उठो ! अर्जुन !'' भारत को कर्मभूमि अकारण ही नहीं कहा गया है। और गीता में श्रीकृष्ण के मुख से ये महत्वपूर्ण शब्द निःसृत हुए हैं— ''मैं भी कर्म करता हूँ।''

शापेनहावर ने, ''The world is will'' (जगत् इच्छा है)—कहकर प्राच्य आदर्श को ही प्रतिपादित किया था। इसी बात की शिक्षा और भी पूर्ण रूप से देते हुए गीता कहती है कि व्यक्तिगत इच्छा को समष्टि इच्छा में समर्पित कर देना चाहिए; अतः तुम्हारा कर्म यज्ञ के रूप में हो। कामनारहित होकर प्रभु की अर्चना के रूप में अपने कर्म सम्पन्न करो। ब्रह्माण्ड की परमसत्ता को आत्मसमर्पण करना ही सच्चे जीवन का रहस्य है। गीता का योगी अपने को जगत् से विच्छिन्न नहीं कर लेता वरन् अपने समस्त कर्म एवं ध्यान के द्वारा भगवान श्रीकृष्ण से संयुक्त हो जाने की आकांक्षा रखता है। गीता कहती है - कर्म करो, कर्म करो; परन्तु तुम्हारा कर्म श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम और उनकी सन्तानों की सस्नेह सेवा के रूप में फलीभूत हो

रामायण और महाभारत—भारत के इन दो प्राचीन महाकाव्यों में वर्णित जीवन-दर्शन में कर्म को समुचित स्थान निर्धारित किया गया है। महाभारत के रचयिता व्यासदेव कर्म के कवि हैं और कर्म को ईश्वरार्पित जीवन में विकसित होना चाहिए। गीता के समान ही इस महाकाव्य में भी हमें कामना-वृक्ष की जड़ को काट डालने का उपाय बताया गया है।

रामायण महाकाव्य भी दैवी इच्छा की आश्रित जीवन में वीरतापूर्ण कार्यों का सौंदर्य प्रदर्शित करता है। महारहस्य के चिन्तन में डूबे रहने वाले ऋषि-मुनि भी कर्तव्य की पुकार सुनते थे। विश्वमित्र और वशिष्ठ दोनों ही ऋषि थे, पर दोनों ही राज्य की घटनाओं में रुचि लेते थे। उन्होंने राम का पथप्रदर्शन किया और महाराजा दशरथ को याद दिलाया कि राजा और राजकुमारों को जनता का सेवक होना चाहिए। तुलसीकृत रामायण आज भी दस करोड़ नर-नारियों का वेद बनी हुई है। तुलसीदास की देव-प्रेरित रामायण-कथा ने हिन्दू-भारत को अत्यधिक प्रभावित किया है। इस ग्रन्थ के उपदेशों के आधार पर करोड़ों हिन्दू गृहों का गठन हुआ है।

कबीर ने बारम्बार कहा है कि ईश्वर जाति, वर्ण आदि नहीं देखते, वे तो मानव-हृदय के अमूल्य उपहार —प्रेम के भूखे हैं। सन्त रामानन्द ने रामायण के उपदेशों को ऐसे ही शब्दों में प्रस्तुत किया है, जिन्होंने सहस्रों लोगों के अन्तर स्पन्दित किये हैं -

''जाति-धर्म के भेद का त्यागकर

जीवन में सबके प्रति भ्रातृभाव रखो
नारी को नर से निकृष्ट न समझो।
श्रीराम सबके हृदय में विराजित हैं
अतः दूर कहीं न भटको
बल्कि अपने अन्तर में ढूंढ़ो !
और जो उन्हें जल अथवा पाषाण में देखते हैं
उनका भी तिरस्कार मत करो।
हर पत्थर में, हर तारे में
श्रीराम के शब्द छिपे हैं
वे सर्वत्र ही प्रकाशित हो रहे हैं।
मन्दिर और मस्जिद में वे ही हैं,
और रवि, शशि, तारे भी
उन्हीं के आलोक से आलोकित हो रहे हैं !"

एक प्राचीन श्लोक में, जहाँ गुरु अपने शिष्य को उपदेश दे रहे हैं, हम पढ़ते हैं—"हमें शक्ति और सत्य की उपलब्धि हो।" विवेकानन्द भी भारत के नवयुकों को दृढ़तापूर्वक अपना सन्देश देते हुए कहते हैं—

"बल ही जीवन है ! निर्बलता ही मृत्यु है
"भारत को वीरों की आवश्यकता है। वीर बनो
और चट्टान की भाँति दृढ़ हो कर खड़े हो जाओ !
"बलवान बनो ! वीर्यवान बनो !
"हमें एकमात्र बल की ही आवश्यकता है।
"भारत को अनन्त शक्ति, अनन्त उत्साह और
अनन्त साहस की जरूरत है।
"खड़े हो जाओ ! निर्भीक बनो ! बलवान बनो !
"जान लो कि तुम्हीं अपने भाग्य के निर्माता हो।
"और कभी न भूलना की तुम्हारी सारी शक्ति
तुम्हारे भीतर ही निहित है !

"तुम्हारे शास्त्र ईश्वर को क्या कहते हैं पढ़ो—उन्हें अभय कहते हैं। अभय होने का प्रयास करो और तुम्हें सच्ची मुक्ति मिल जाएगी।

"हमारे युवक बलवान हों—पहले बल चाहिए।
फिर बल से धर्म का विकास हो जाएगा।"

निश्चय ही आज भारत को शक्ति के सन्देश की आवश्यकता है। शक्तिमान नागरिक भारत को एक नये राष्ट्र में—एक सच्चे स्वाधीन राष्ट्र में परिणत कर देंगे। अपनी शिक्षा की परिकल्पना में स्वामीजी ने (१) पौरुष पूर्ण खेलकूद और (२) वीरों एवं ऋषियों के प्रति श्रद्धा —इन दो बातों पर बल दिया है। विवेकानन्द ने कहा है - "शरीर में ताजा रक्त होने से तुम कृष्ण की महती प्रतिभा और महान् तेजस्विता को अच्छी तरह समझ सकोगे। जिस समय तुम्हारा शरीर तुम्हारे पैरों के बल दृढ़ भाव से खड़ा होगा, जब तुम अपने को मनुष्य समझोगे, तब तुम उपनिषद् और आत्मा की महिमा भलीभाँति समझोगे। अपना पौरुष अभिव्यक्त करो !"

स्वामीजी के हृदय के निम्नलिखित उद्गारों में उनका कितना गहरा स्नेह और कितनी सच्ची देशभक्ति झलकती है—

"अहा ! यदि तुम अपने आपको जान पाते, कि तुम लोग आत्मा हो ! ईश्वर हो !

"वत्स मैं चाहता हूँ, लोहे की मांसपेशियाँ और फौलाद के स्नायु, जिनके अन्दर ऐसे मन का वास हो, जो वज्र के उपादानों से गठित हो।

"यदि सारी दुनिया हाथ में नंगी तलवार लेकर तुम्हारे विरोध में खड़ी हो जाए, तो भी क्या तुम जिसे सत्य समझते हो, उसे पूरा करने का साहस करोगे ? यदि तुम्हारे पत्नी-पुत्र तुम्हारे प्रतिकूल हो जाएँ, भाग्य-लक्ष्मी तुमसे रुठकर चली जाए, नाम-कीर्ति भी तुम्हारा साथ छोड़ दे, तो भी तुम उस सत्य से अलग तो न होगे?"

(२)

इमर्सन भी प्राच्यदेशीय ऋषियों के ही समान थे। उन्होंने शक्ति के सिद्धान्त को दुहराते हुए कहा है—"The world belongs to the energetic," (यह जगत् ओजस्वी लोगों का ही है)। वस्तुतः इस जगत्, भावी जगत्—नव भारत, नव प्राच्य, नव पाश्चात्य के जीवन में रचनात्मकता को, नयी आशा को, नयी आस्था को, चरम विश्वास और एक अभिनव शक्ति को जगाना होगा। शक्ति के जागरण से ही किसी भी दिशा में

प्रगति हो सकती है ।

स्वामीजी ने कहा "जिस बात की दुनिया को आज आवश्यकता है, वह है ऐसे स्त्री-पुरुष जो सड़क पर खड़े होकर सबके सामने यह कहने का साहस कर सकें कि हमारे पास ईश्वर को छोड़कर और कुछ नहीं है । कौन निकलेगा ?" वे और भी कहते हैं—"संसार चाहता है चरित्र । संसार को आज ऐसे लोगों की आवश्यकता है. जिनके हृदय में निःस्वार्थ प्रेम प्रज्वलित हो रहा हो। उस प्रेम से प्रत्येक शब्द का वज्रवत् प्रभाव पड़ेगा । जागो, जागो, ऐ महान् आत्माओ, जागो ! संसार दुःखाग्नि से जला जा रहा है । क्या तुम सोये रह सकते हो ?" उन्होंने कहा -- "चरित्र ही आध्यात्मिकता है ।"

मैं नम्रतापूर्वक स्वीकार करता हूँ कि भारत की वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था असफल हुई है क्योंकि यह रचनात्मक शक्ति को जाग्रत नहीं करती । वर्तमात शिक्षा अनुकरण मात्र है। तुम कहते हो कि यह बुद्धि को तेज बनाती है । हाँ, पर यह एक तीक्ष्ण धार के छुरे के समान है जिसका कार्य है काटना और अलग करना । भारत को आज एक ऐसी शक्ति की आवश्यकता है जो निकट लावे, जोड़े और निर्माण करे। प्रचलित शिक्षा अलगाव वादी है । अंग्रेजी शिक्षाप्राप्त लोगों को देखो ! उनके तथा आम जनता के बीच कितनी गहरी खाई है। वर्तमान शिक्षा ने बुद्धि को तो कुछ हद तक तेज अवश्य किया है, पर इस तीक्ष्ण बुद्धि ने हमें ग्राम्य-संस्कृति से विच्छिन्न भी कर दिया है और इसके फलस्वरूप हम गरीबों में निहित दिव्यता को कुचलते हैं । तीक्ष्ण बुद्धि नहीं, वरन् एक स्नेहपूर्ण हृदय ही मूल वस्तु है। इसी में जीवन की महानता सन्निहित है ।

दयानन्द के समान ही विवेकानन्द भी एक आध्यात्मिक पहलवान थे– शक्तिमान पुरुष थे, परन्तु उनके कोमल हृदय में दरिद्र एवं पिछड़े लोगों के प्रति अतीव स्नेह था । उन्होंने कहा —"मैं उसी को महात्मा कहता हूँ, जिसका हृदय गरीबों के लिए रोता है; अन्यथा वह तो दुरात्मा है ।" वे कहते हैं—"जब तक लाखों लोग भूखे और अज्ञानी हैं, तब तक मैं उस प्रत्येक व्यक्ति को कृतघ्न समझता हूँ जो उनकी ओर ध्यान तक नहीं देता ।" तदुपरान्त -- "भगवान् को खोजने तुम कहाँ जाओगे ? क्या ये गरीब, दुःखी और दुर्बल, भगवान् नहीं हैं ? गंगातीर पर कुआँ खोदने क्यों जाते हो ? क्या तुममें प्रेम है ? क्या तुम पूर्णतः निःस्वार्थ हो ? यदि हाँ, तो तुम अजेय हो ।

"मुझे अपने मानव-बन्धुओं की सहायता करने दो— मैं बस यही चाहता हूँ ।

"अपने इन बाह्य अनुष्ठानों को तिलांजलि दे दो और पूजा करो जीवन-ईश्वर की, मानव-देव की,— प्रत्येक जीव की, जो मानव-रूप लिये हुए है !

"जाओ, जाओ, तुम सब लोग वहाँ जाओ, जहाँ प्लेग फैला हो, जहाँ दुर्भिक्ष छाया हो, जहाँ लोग दुःख-कष्ट के भार से पीड़ित हों, और जाकर उनका दुःख हलका करो ।

"ऐ नवयुवको, मैं गरीबों, मूर्खों और उत्पीड़ितों के लिए इस सहानुभूति और सेवा को थाती के तौर पर तुम्हें सौंपता हूँ ।

"जाओ, इसी क्षण जाओ उस पार्थसारथि के मंदिर में, जो गोकुल में दीन दरिद्र ग्वालों के सखा थे, जो गुहक चण्डाल को भी गले लगाने में नहीं हिचके, जिन्होंने अमीरों का न्योता अस्वीकार कर एक वारांगना का न्योता स्वीकार किया ।

"मत भूलो कि वे उन दीन, पतित और उत्पीड़ितों के लिए, जिन्हें वे सबसे अधिक प्यार करते हैं, युग युग में अवतार लिया करते हैं ।

"जो मनुष्य शिव को केवल मन्दिरों में देखता है, उसकी अपेक्षा शिव उस व्यक्ति पर अधिक प्रसन्न होते हैं जिसने बिना किसी प्रकार जाति, धर्म या सम्प्रदाय का विचार किये, एक दीन-हीन में शिव को देखते हुए उसकी सेवा और सहायता की है ।"

हाँ, हमें निर्धनों की शुभकामना की जरूरत है ।

अपना आहार, सम्पदा और उपहार उनके साथ मिल-बांटकर उपभोग करना होगा, और मेरा तो विश्वास है कि उन्हीं के चरणों में भारत की स्वाधीनता निहित है ।

त्याग के माध्यम से ही सर्वोच्च सेवा विकसित होती है। त्याग ही संन्यास है और बहुत्व में एकत्व की अनुभूति से ही इसका उदय होता है। सच्चा सेवक उस एक को अपना सर्वस्व समर्पित कर देता है। स्वामीजी कहते हैं "इस जगत् की सृष्टि करने के लिए पुरुष ने अपने को ही होम कर दिया। तुम भी अपनी सुख-सुविधा, नाम और यश, यहाँ तक कि अपना जीवन भी होम करके एक ऐसा मानव-सेतु बनाओ, जिस पर से होकर करोड़ों लोग इस जीवन-समुद्र को पार कर सकें।"

अतः एक सच्चा संन्यासी एक 'दाता' है, जो अपने अभावग्रस्त भाइयों एवं बहनों को सेवा, सहायता तथा जो भी छोटी-मोटी चीजें सम्भव है उपहार देता है, और सर्वोच्च उपहार के रूप में स्वयं का भी दान कर देता है। संन्यासी दीन-दुखियों का बन्धु है और उन्हें अपने एकमात्र प्रभु का प्रच्छन्न रूप मानता है। विवेकानन्द कहते हैं "देखो, नारायण स्वयं ही तुम्हारे द्वार पर एक भिक्षुक के रूप में उपस्थित हैं, वे क्षुधा से मृतप्राय से दीख पड़ते हैं।...अपने हृदय में प्रेम लेकर उनके समीप जाओ और जो भी सम्भव हो उन्हें अर्पित करो।" और अर्पित करना होगा, बदले में कुछ चाहे विना ही। स्वामीजी ने कहा—"लेन-देन का भाव छोड़ो, तुम भी वैसे ही दो जैसे कि ईश्वर हमें देते हैं।"

ईसा मसीह के बारे में हम प्राच्य ग्रन्थों में पढ़ते हैं कि प्रातःकाल जब भी किसी से उनकी भेंट होती तो वे कह उठते—"दो, दो, दो।" ईसा और कृष्ण के ही भाव में विवेकानन्द ने कहा "दो, वह सबकुछ जो दे सको, दे डालो, और प्रतिदान के लिए पीछे मुड़कर न देखो।"

एक प्राचीन हिन्दू ग्रन्थ में राज्य की कार्यकुशलता के सात लक्षणों में हम इन दो को भी पाते हैं— (१) एकता और (२) जनसाधारण के प्रति सहानुभूति। श्रीराम के काल से लेकर अब तक के हमारे इतिहास में वे ही महान् हुए हैं, जो निर्धनों से स्नेह और उनकी सेवा करते रहे हैं। श्रीराम ने अस्पृश्य भीलनी शबरी के हाथ से बेर खाये थे। श्रीकृष्ण को 'दीनबन्धु' की उपाधि बड़ी प्रिय थी। बुद्धदेव अपना राजमहल त्यागकर भिक्षुओं के संघ में सम्मिलित हो गये थे। नानक तथा अन्य गुरु निर्धनों के सम्पर्क में रहा करते थे। चैतन्यदेव एक ब्राह्मण पण्डित होने के बावजूद अपनी जाति के नियमों को अमान्य कर गरीबों की संगति में आनन्द पाते थे। कम लोगों को ही ज्ञात है कि प्राचीन भारत में निर्धन एवं पीड़ित यात्रियों की सेवा के लिए सुव्यवस्थित अस्पताल बने हुए थे। पशुओं के लिए अलग अस्पताल थे। वे भी तो आखिर हमारे भाई ही हैं!

विवेकानन्द ने कर्म को उन्नीत कर पूजा का दर्जा दिया, परन्तु केवल ईश्वरार्पित कर्म को ही, मानव सेवा को ही। ऐसे समर्पित लोगों की सेवा हम सबको रामराज्य की ओर ले जाती है। ऐसा व्यक्ति धन्य हो जाता है; उसी के जीवन में कर्म और उपासना का समन्वय साधित होता है। उसी के जीवन में सच्चे वैष्णव की अभिव्यक्ति होती है, जिसका वर्णन महान् सन्त नरसी मेहता ने अपने एक अति सुललित पद में किया है, और जो महात्मा गांधी को इतना प्रिय था कि वे इसी भजन के साथ अपनी दैनिक 'प्रार्थना-सभा' प्रारम्भ करते थे। वह इस प्रकार है—

(भावार्थ) —

"वही सच्चा वैष्णव है, और धन्य है वह!
जो अपने मानव-भाइयों का दुःख-दर्द समझता है
और विना किसी प्रत्याशा के
उनकी सहायता करता है।
सबके प्रति उसका प्रेम उमड़ता है।
उसमें धन की तृष्णा नहीं होती,
कामना और अहंकार-मुक्त वह
प्रत्येक नारी में जगदम्बा को देखता है।
सत्य से उसे लगाव होता है
और वह कभी मिथ्या नहीं बोलता

वासना और आसक्ति से मुक्त
उसके हृदय के भाव
मन की कामनाओं से स्वाधीन रहते हैं।
वह प्रेममय प्रभु की ही कामना करता है
उसकी देह काम-क्रोधादि दोषों से मुक्त
तीरथ स्वरूप हो गयी है।
धन्य है वह सच्चा वैष्णव !
वस्तुतः उसी को शान्ति मिलती है
उसी को आनन्दोपलब्धि होती है
उसी को दिव्य-दर्शन होते हैं
और वही शुद्ध, पवित्र एवं अतुल हो जाता है।

(३)

विवेकानन्द का जीवन—एक अद्भुत कथा है। मुझे इसमें ईश्वर की अनुकम्पा दीख पड़ती है। विवेकानन्द कुशाग्र बुद्धि सम्पन्न थे और उन्होंने उच्च शिक्षा पायी थी। ग्रीन, गिवन, मिल स्पेन्सर, डेस्कार्ट्स, ह्यूम, काण्ट, फित्से, हेगेल, शापेनहावर, कामटे तथा डार्विन के विचारों से सुपरिचित, नेपोलियन एवं महाक्रान्ति के विचारों से अनुप्रेरित और पाश्चात्य ज्ञान की नवसुरा पान से उन्मत्त -- विवेकानन्द महान् सन्त श्रीरामकृष्ण परमहंस से मिलते हैं। सन्त का विवेकानन्द के प्रति प्रेम उमड़ पड़ता है। अपने प्रश्न के उत्तर में उनके कानों में सन्त के ये शब्द ध्वनित होते हैं—"हाँ, ईश्वर का दर्शन हो सकता है। मैं उन्हें देखता हूँ, उनके साथ बातें करता हूँ, ठीक वैसे ही जैसे तुम्हें देखता और तुमसे बातें करता हूँ। परन्तु उन्हें पाना भी भला कौन चाहता है ? लोग नारी और सम्पदा के लिए आंसू की झड़ी लगा देते हैं, पर ईश्वर के लिए भला कौन रोता है ? तथापि मैं निश्चित रूप से कहता हूँ कि जो उनके लिए सच्चे दिल से रोता है, वे कृपा करके उसके समक्ष प्रकट हो जाते हैं।"

कुछ वर्षों तक विवेकानन्द के मन में अन्तर्द्वन्द्व बना रहा और एक दिन सहसा उनकी आँखें खुल गयीं, एक अद्भुत अनुभूति हुई। शंका और अनास्था के पीड़ादायी तूफानों से होकर गुजरते हुए अन्ततः वे कह उठे—"शिव ! शिव !" अपने चारों ओर उन्हें एक अलौकिक उपस्थिति अनुभूत हुई थी। उनमें एक अभिनव जीवन का संचार हुआ। उन्हें विश्वास हुआ, अनुभूति हुई और विवेकानन्द एक नये ही व्यक्ति में रूपान्तरित हुए। उनकी कॉलेज-जीवन की महात्वाकांक्षाएँ विलीन हो गयीं, उनका जीवन समर्पित हुआ और अब वे संन्यास लेकर ईश्वर और मानव के सेवक हो गये।

हिन्दू धर्म के महान् मूल्यों में आस्थावान होकर उन्होंने इसे एक विश्वशक्ति का रूप देना चाहा। उन्होंने कहा—"ईश्वर को साथ लेकर तुम सागर पार कर सकते हो, पर उन्हें छोड़कर तुम द्वार तक नहीं पार कर सकते।" ईश्वर को साथ लेकर विवेकानन्द ने समुद्र पार किया था, महाद्वीप पार किये थे और सर्वत्र उन्होंने ऋषियों के ज्ञान का प्रचार किया। भारत, इंग्लैण्ड और अमेरिका के प्रति स्वामीजी का आह्वान था—"उत्तिष्ठत ! जाग्रत !" हिन्दू-धर्म को विश्व-जयी बनाने के लिए अपने सन्देश के द्वारा उन्होंने अनेक भारतवासियों के हृदय में आलोक का आनयन किया। विश्व-मूल्यों के सन्दर्भ में उन्होंने हिन्दू-संस्कृति की व्याख्या की। विश्व के राष्ट्रकुल के समक्ष उन्होंने विश्वबन्धुत्व के सन्देश की घोषणा की।

विवेकानन्द अकिंचन ही अमेरिका पहुँचे और कुछ काल बाद ही शिकागो की धर्ममहासभा में प्रकट हुए। हिन्दू धर्म के प्रतिनिधि के रूप में उन्होंने महासभा को सम्बोधित किया। यद्यपि उनका व्याख्यान संक्षिप्त था, तथापि उन्होंने अपने भव्य व्यक्तित्व और हिन्दू धर्म की व्याख्या से सबको मंत्रमुग्ध कर दिया। हिन्दू धर्म को उन्होंने सर्व धर्मों के एकत्व और मानव सेवा के नीति-शास्त्र के रूप में प्रस्तुत किया। उन्होंने बताया कि मनुष्य मात्र की सेवा ही ईश्वर की सर्वोच्च पूजा है।

ईश्वर के सेवक की दृष्टि में सम्प्रदायों और मतवादों का कोई महत्व नहीं। विविध मतवाद एक ही सत्य के टुकड़े हैं। धर्म ही जीवन है। 'हिरण्यमय पुरुष' का हृदय

में दर्शन ही है। अतः विवेकानन्द ने विश्वधर्म के महान् सत्यों की अनुभूति की। उन्होंने इस्लाम और उसके सामाजिक समता के सन्देश का महत्व समझा, ईसामसीह के उपदेशों की गहराई को जान लिया। वह भी तो आखिर आध्यात्मिक अद्वैत का ही सन्देश था। ईसा ने कहा था, "मैं और मेरे परमपिता एक हैं।" फिर, "वैसे ही पूर्ण बनो जैसे कि तुम्हारे स्वर्गस्थ पिता हैं।" और उनके काल के यहूदी लोग उन्हें नहीं समझ पाये। पाश्चात्य देशों में आज भी भला उन्हें कितने लोग समझते हैं? ईसामसीह पूरब और पश्चिम को सन्देश देनेवाले एक प्राच्य योगी थे।

श्रीरामकृष्ण और उनके बाद विवेकानन्द ने घोषणा की कि अनुभूति ही धर्म है। हृदय में अन्तश्चेतना का स्फुरण ही धर्म है। यह एक धर्म सिद्धान्त मात्र नहीं है। ऋषियों की आध्यात्मिक अनुभूतियों का अनुलिखन ही वेद है और वेद ही हिन्दू जाति की महान् सम्पदा हैं, क्योंकि वे ऋषियों द्वारा विविध अवसरों पर आविष्कृत आध्यात्मिक नियमों की पुष्टि करते हैं। इन 'नियमों' का एक-दूसरे के साथ पूर्ण सामंजस्य है—यहाँ तक कि ज्ञानयोग, राजयोग, भक्तियोग तथा कर्मयोग आदि पथों में भी आपसी सामंजस्य है और इनमें से किसी एक का भी आश्रय लेकर आध्यात्मिक साक्षात्कार हो सकता है। इसीप्रकार विभिन्न धर्म भी एक-दूसरे के विरोधी नहीं हैं। विविध धर्म भाषाओं के समान हैं और श्रीरामकृष्ण की सलाह है कि हमें प्रत्येक व्यक्ति से उसी की भाषा में बात करनी चाहिए।

बहुत्व में एकत्व के इस तत्त्व को एक सिन्धी विद्वान् एवं कवि अबुल फजल ने काश्मीर के मन्दिर में एक शिलालेख के द्वारा बड़े सुन्दर रूप में अभिव्यक्त किया है। इसमें उन्होंने सभी लोगों से यह स्मरण रखने का अनुरोध किया था कि ईश्वर ही सभी राष्ट्रों के शासक और सभी धर्मों के एकमात्र प्रेरणास्रोत हैं। अबुल फजल ने इसमें मानो गीता और उपनिषद् के भाव को, रामकृष्ण, केशवचन्द्र और विवेकानन्द की प्रेरणा को वाणी दी है। अबुल फजल ने लिखा है।

(भावार्थ) :—

"मैं ईसाई मठ में जाता हूँ,
और मस्जिद में प्रार्थना करता हूँ
पर सर्वत्र मैं केवल तुम्हीं को ढूंढ़ता हूँ!
तुम्हारी तलाश में मैं
इस भवन से उस भवन को जाता हूँ!
प्रत्येक मन्दिर में, हे प्रभो, मैं देखता हूँ
तुम्हें पाने की कामना से
अनेक लोग तुम्हारी स्तुति गाते हैं।
हर शास्त्र में हर भाषा में
वे अब भी तेरी—
एक, अद्वय, सनातन परमात्मा की
स्तुति गाते हैं।
मुस्लिम मस्जिद की प्रार्थना में
हिन्दू मन्दिर की आरती में
और ईसाई-चर्च की उपासना में
मैं केवल तुम्हारी ही स्तुति सुन पाता हूँ
तुम्हारी ही भक्ति का अवलोकन करता हूँ।"

(४)

रामकृष्ण, उनके प्रिय शिष्य विवेकानन्द, केशवचन्द्र और दयानन्द सरस्वती—इन सभी ने एक नवीन भारत के निर्माणार्थ यथाशीघ्र एकता की आवश्यकता का बोध किया। दयानन्द ने ऋग्वेद में ग्रथित इस उपदेश का महत्व समझा—"एक-दूसरे के साथ शान्तिपूर्ण मेल-जोल और सहयोगपूर्वक कर्म हों, प्रेम एव सहानुभूति के साथ पारस्परिक चर्चा हो, सबके हृदय में आपसी सामंजस्य हो और सबकी भलाई के कार्य में बुद्धि को नियोजित किया जाय।" 'आपसी सहयोग' और 'परस्पर सहायता' का यह सिद्धान्त वेद के कई मंत्रों में निरूपित हुआ है। भारतवर्ष का इतिहास बताता है कि 'असंगठन' ने हमारी पतनोन्मुख अवस्था को वेग प्रदान किया है।

कोमलता और शक्तिहीनता ही हमारे असंगठन का कारण है। शक्ति के द्वारा ही एकता आती है और स्वास्थ्यकर स्वाधीनता आती है। एकता के अभाव में

ही हमें भारत-विभाजन का कष्ट उठाना पड़ा। राजनीतिक नेताओं, संगठन कर्ताओं की अपेक्षा भारत को सच्चे आध्यात्मिक लोगों की कहीं अधिक जरूरत है। जरूरत है समझदार दिल वालों की, ऋषियों एवं पैगम्बरों की, पथप्रदर्शकों और आलोक दिखानेवालों की, ज्ञान के सन्देशवाहकों की, सहानुभूति एवं समर्पण के भाव से सम्पन्न लोगों की, भारत के भाग्य में विश्वासी विवेकवान शिक्षकों की और ऐसे लोगों की, जो (स्वामीजी के शब्दों में), "अपने जीवन के द्वारा यह प्रदर्शित करते हैं कि धर्म का तात्पर्य कुछ शब्द, कुछ नाम या कुछ मतवाद मात्र नहीं है, अपितु आध्यात्मिक अनुभूति ही सच्चा धर्म है।"

जहाँ तक वैज्ञानिक खोजों और संगठित जीवन का सवाल है, जहाँ तक समाज के स्वरूप और सामाजिक जीवन की उपयोगिता का प्रश्न है, हमें पश्चिमी जगत् से काफी कुछ सीखना होगा। और साथ ही हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि पश्चिम के पास भी अपना एक अध्यात्म है, जो प्राच्य आध्यात्मिकता से कोई कम मूल्यवान नहीं है। भारत को अपने निर्धन एवं पिछड़े लोगों के लिए बहुत सा कार्य करना है। पश्चिमी जगत् से सीखने के लिए भारत को विनय भाव की आवश्यकता है। कर्मक्षेत्र में हमें परमसत्ता के साथ एकत्व का अनुभव करने की जरूरत है। इच्छाशक्ति रूपी परमेश्वर को ऐसे लोगों की आवश्यकता है जो कर्म के बीच उनकी अनुभूति कर सकें।

विवेकानन्द ने राष्ट्रीय-जीवन की परिकल्पना में तकनीकी, वैज्ञानिक और राजनीतिक उपलब्धियों को उचित स्थान दिया। राष्ट्रनिर्माण के लिए उन्होंने चिकित्सा, स्वच्छता, विद्युत एवं खाद्य-उत्पादन का महत्व भी समझा था। पर साथ ही हमें यह भी विस्मृत नहीं करना चाहिए कि समाज कल्याण के ये सारे प्रोग्राम 'आत्मा' नामक नियामक व्यवस्था की भी अपेक्षा रखते हैं। केवल तकनीकी ज्ञान से भारत को पुनर्जीवन नहीं मिल सकता। भारतीय जीवन की जड़ आत्मा में फैली हुई है और हमें इसे काटना नहीं चाहिए। आत्मा का यह सन्देश केवल भारत ही नहीं, सभी राष्ट्रों के लिए है, क्योंकि आधुनिक जीवन विशृंखल एवं विकृत हो चुका है। यूरोप की हालत राजनीतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक दृष्टि से डाँवाडोल है। बाल्ज़क, दोस्तोवस्की और रोलाँ ने यूरोप के जीवन एवं चिन्तन में अस्थिरता की ओर बारम्बार हमारा ध्यानाकर्षण किया है। ऐसे लोगों की संख्या भी कम नहीं है, जिन्हें एक नये सम्भावित तूफान—तृतीय विश्वयुद्ध के आसार दीख पड़ते हैं।

अनेक लोगों का जैसा अनुमान है, वास्तविक परिस्थिति कहीं उससे भी अधिक गम्भीर है। एक अनुमान के अनुसार आज भी विश्व की तीन-चौथाई जनसंख्या को शिक्षा, भरपेट भोजन, उचित आवास तथा चिकित्सा की सुविधा उपलब्ध नहीं है। मानवजाति का तीन-चौथाई हिस्सा अभावग्रस्त है। ऋषिगण और विवेकानन्द राष्ट्रों को आह्वान करके कहते हैं—"क्या तुम अपनी आँखें खोलकर देखोगे?"

काफी काल पूर्व ही भारत के ज्ञानी पुरुषों ने एक नियम का आविष्कार किया था, जिसे 'कर्म का सिद्धान्त' कहते हैं। इस सिद्धान्त का एक दृष्टिकोण यह है कि क्रूरता, अहंकार एवं विलासिता पर आधारित शक्ति का पतन हो जाता है, निष्ठुर शासन का अन्त हो जाता है। आप आज भी प्लेटो के संवाद के वे पृष्ठ पढ़ सकते हैं, जहाँ गीतिकाव्य का सौन्दर्य बड़ा प्रभावशाली बन पड़ा है ओर जहाँ वे वर्णन करते हैं कि किस प्रकार अटलाण्टिस का साम्राज्य अपने अहंकार, विलासप्रियता और अतिभोग के कारण पतन के गर्त में चला गया। कर्म-सिद्धान्त निर्दयता, अहंता और कामुकता को चेतावनी देता है। क्या यूरोप और एशिया, भारत और अमेरिका पर अधिकार जमानेवाले लोग ऋषियों की इस प्रज्ञा की ओर ध्यान देंगे?

भारत के और यूरोप के भी लोगों ने मुझसे पूछा है "धर्म क्या है" मेरा उत्तर संक्षिप्त है—"धर्म कर्म है—समर्पित कर्म; धर्म वह क्रिया है, जो परमात्मा को

समर्पित कर्म के रूप में प्रस्फुटित होता है।" फिर लोगों ने मुझसे पूछा—"और वह मन्दिर कहाँ है, जहाँ हम ईश्वर के प्रति अपनी पूजा अर्पित कर सकें ?" मेरा उत्तर हिन्दू ऋषियों के इन शब्दों में निहित है—"तुम सभी तीर्थयात्री हो और तुम्हारा प्रतिदिन का जीवन-यज्ञ ही तुम्हारा मन्दिर है।"

हिन्दू धर्म का सन्देश है कि जीवन देकर ईश्वर का पूजन करो। मेरी परमप्रिय जन्मभूमि सिन्धु के एक गायक ने अपने एक लघु किन्तु भावभीने पद्य में यह सन्देश इस प्रकार व्यक्त किया है :—

इस जग में तुम सभी तीर्थयात्री हो
कोई सच्चाई के साथ नहीं कह सकता
कि यह धरती मेरी है।
चलो ! मेरे सहयात्री बन्धुओ, चलो !
पृथ्वी से उसके परे की यात्रा को
अपने जीवन की बलि देते हुए
बढ़े चलो !

स्वामी विवेकानन्द के सन्देश को समझने के सप्त सोपान

—श्रीमती गौरी चट्टोपाध्याय
दर्शन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय

उन्नीसवीं शताब्दी का भारत—हिन्दू धर्म के वास्तविक स्वरूप को लगभग सभी लोग भूल चुके थे। उसकी जीवनी शक्ति, आचार-अनुष्ठान के ध्वंसस्तूप के अन्दर दब गयी थी। भारतीय बुद्धिजीवी लोग उस अनुष्ठान पर्व को अस्वीकार करते थे एवं ब्रिटिश शासक उसका परिहास करते थे। ऐसे ही समय में कलकत्ता के श्री विश्वनाथ दत्त की पत्नी भुवनेश्वरी देवी ने एक पुत्र को जन्म दिया। उस पुत्र का नाम नरेन्द्र दत्त रखा गया। वे ही बाद में हमारे विश्वविख्यात स्वामी विवेकानन्द हुए।

नरेन्द्र दत्त बचपन से ही अत्यन्त मेधावी, दृढ़चेता, साहसी, दयावान एवं त्यागी थे। एक बार वे अपने अंग्रेज शिक्षक से समाधि (trans) की व्याख्या सुन रहे थे। कक्षा के सभी विद्यार्थी शिक्षक द्वारा की गयी समाधि की व्याख्या से सन्तुष्ट हुए, परन्तु नरेन्द्र दत्त ने और भी स्पष्ट रूप से जानने की इच्छा व्यक्त की। इस पर शिक्षक ने उन्हें दक्षिणेश्वर में स्थित कालीमंदिर के पुजारी ठाकुर रामकृष्ण परमहंस से मिलने के लिए कहा, क्योंकि वे अक्सर समाधिस्थ हो जाते थे। नरेन्द्र दत्त ठाकुर से मिलकर अत्यन्त प्रभावित हुए एवं उन्होंने कई तरह से परखने के पश्चात् उन्हें अपना गुरु मान लिया। ठाकुर को गुरु मानकर उन्हें इस बात का एहसास हो गया कि उन्हें ऐसे ही गुरु की तलाश थी, क्योंकि बहुत दिनों से उन्हें एक प्रश्न सता रहा था कि भगवान हैं अथवा नहीं। इसी प्रश्न को लेकर वे बहुतों के पास पहुँचे भी थे, परन्तु कोई ठाकुर की तरह दृढ़ता के साथ यह नहीं कह पाया—"हाँ हैं।" और यह पूछने पर कि भगवान को ठाकुर ने देखा है कि नहीं, ठाकुर ने उत्तर

दिया'' हाँ देखा भी है । जितना स्पष्ट मैं तुम्हें देख रहा है उतना ही स्पष्ट । यदि पुम चाहो तो मैं तुम्हें भी दिखा सकता हूँ ।''

ठाकुर रामकृष्ण देव भी नरेन्द्र दत्त जैसे प्रतभिाशाली शिष्य की तलाश में थे । एक बार नरेन्द्र तत्त ने ठाकुर से यह आग्रह किया कि ठाकुर उन पर कृपा करें जिससे समाधि में डूब कर उसका आनन्द भोग करते रहें और जब शरीर चालन के लिए अन्न का प्रयोजन हो तो समाधि से उठकर उसे ग्रहण करें और पुनः समाधि में चले जाएं । अर्थात नरेन्द्र दत्त अन्तर्मुखी होना चाहते थे, वे अपना ही सुख भोगना चाहते थे । परन्तु ठाकुर ने उन्हे बाधा दी । क्योंकि उन्होंने अन्तर्मुखी होकर सुख भोगने से वहिर्मुखी होकर पर-सुख की चेष्टा को श्रेष्ठ माना । नरेन्द्र दत्त में अद्भुत कर्म की क्षमता को उन्होंने पहचाना था अतः लोक-कल्याणार्थ उन्होंने नरेन्द्र दत्त को वर्हिर्मुखी होने को प्रेरित करते हुए, समाधि में जाने से रोका ।

पिता द्वारा पति की निन्दा न सहन कर सत्ती ने आत्मदाह किया । सती के शव को लेकर शिव प्रलयङ्कर हो गये । उनके क्रोध की शान्ति विष्णु ने शव को क्रमशः विखण्डन करके किया । शान्त शिव कर्म-विरत हो समाधि रत हो गये । कपटी असुर तारक ने तपस्या कर शिव-पुत्र से ही अपनी मृत्यु का वरदान मांगा, जो कि अमरत्व सदृश था क्योंकि सती-वियुक्त शिव से सन्तति संभव ही नहीं थी । तारक के उत्पात से त्रस्त देवताओं के कल्याणर्थ विष्णु ने शिव को वहिर्मुखी करने के लिए उमा के रूप में सती के पुनर्जन्म की सूचना दी ।

पुराणों में वर्णित इस कथा में भगवान शंकर की तुलना नरेन्द्र दत्त से की जा सकती हैं, जिन्हें भगवान विष्णु की तरह ठाकुर ने अन्तर्मुखी होने से रोका । संन्यास ग्रहण करके नरेन्द्र दत्त स्वामी विवेकानन्द वने और लोक-कल्याणार्थ उन्होंने जो कुछ किया वह स्मरणीय है । स्वामीजी ने हमारा जो सबसे बड़ा कल्याण किया, वह यह कि उन्होंने हमें हमारे ही धर्म के स्वरूप का, जिसे हम विस्मृत कर चुके थे, पुनःस्मरण करवाया । विदेशियों को हमारे धर्म के विषय में सही जानकारी दी । धर्म के विषय में उनके सन्देश को समझने के लिए निम्न सप्त सोपानों पर विचार आवश्यक है :—

(१) ''धर्म को ठीक-ठीक समझो'—

स्वामीजी का कहना है कि धर्म भारत का प्राणकेन्द्र है । धर्म भारत का वैसे ही प्राणकेन्द्र है जैसे अमेरिका का राजनीति, एवं इंग्लैंड का वाणिन्य नीति । अतः यह कहना, जैसा कि नासमझी में प्रायः लोग कहते हैं कि भारत की उन्नति में धर्म बाधक है, अत्यन्त भूल है । इतिहास के पृष्ठ पलटने पर हमें यह ज्ञात होता है कि धार्मिक राजा अशोक या समुद्रगुप्त के काल में समृद्धि अपने शिखर पर पायी थी । यदि हमें अपने देश में कोई बुराई दृष्टिगोचर होती है तो वह धार्मिक होने के कारण नहीं वरन् धर्म के प्रति हमारी सही दृष्टि न होने के कारण है । धर्म भारत का प्राणकेन्द्र है, हम बात से सिद्ध होता है कि हमारा देश हजारों वर्ष की दासता के पश्चात् भी आज जीवित है । सौं वर्ष के दासत्व के पश्चात् जीवित रहना ही असंभव हो जाता है, अतः हजार वर्ष की दासता के बाद जीवित रहने का एक मात्र कारण यही कहा जा सकता है कि भारत ईश्वर से पूर्णतः जुड़ा हुआ था और उसके प्राणकेन्द्र धर्म को आक्रान्त नहीं किया जा सका था । जापान और जर्मनी द्वितीय विश्वयुद्ध में ध्वंस होने के पश्चात् भी आज मात्र जीवित ही नहीं हैं, वरन् उनकी गणना अत्यन्त समृद्धिशाली देशों में होती है । इसका कारण यही है कि बाह्य अंश में अघात लगा था, प्राण पर नहीं । चूँकि प्राण पर आघात लगने से ही किसी की मृत्यु होती है इसलिए भारत तब तक जीवित रहेगा जब तक हम इतफे प्राणकेन्द्र को बचाते रहेंगे । यूनान, रोम, मिश्र, वेबिलोन आदि देश आज कहाँ हैं ? मात्र इतिहास के पृष्ठों में । परन्तु भारत मात्र मानचित्र में या इतिहास के पृष्ठों में नहीं है । भारत जीवित है और आज भी विश्व का गुरु बनने के लिये अग्रसर हो रहा है । भारत तो जगत का गुरु था, पतन हो गया है परन्तु अपनी पतनावस्था की यदि पहचान हो जाये तो

पुनः उसका उद्धार हो सकता है। वर्तमान काल में धर्म की स्थिति वैसी ही जैसी राख में ढकी अग्नि की स्थिति। उसे तो मात्र धधकाने का प्रयोजन है। अतः स्वामीजी पुनरूक्ति करते हुए कहते हैं 'अपने सनातन धर्म को सम्यक् रूप से समझो।"

(२) स्वामीजी ने कहा है धर्म तो एक ही है, बाकी सब संप्रदाय हैं। स्वामीजी के इस द्वितीय सन्देश को एक उदाहरण के माध्यम से स्पष्ट रुप से समझा जा सकता है। माना कि किसी पर्वत के शिखर पर जाने के लिए किसी व्यक्ति को एक पपडंडी का ही ज्ञान है अतः यदि कोई दूसरा व्यक्ति जो पर्वत के उस शिखर पर जाने का इच्छुक है, प्रथम व्यक्ति से वहाँ पहुँचने का मार्ग पूछता है तो प्रथम व्यक्ति उसे वही पगडंडी का मार्ग बताता है जिससे वह स्वयं परिचित है। उसके पूछने पर कि क्या शिखर पर पहूँचने का अन्य कोई मार्ग नहीं है तो अन्य किसी मार्ग का ज्ञान न होने पर वह निषेधात्मक उत्तर ही देता है। प्रथम व्यक्ति के निर्देशित मार्ग का अनुसरण कर द्वितीय व्यक्ति शिखर पर पहुँच कर स्वयं और अनेक मार्गों को ज्ञात कर लेता है। परन्तु शिखर पर पहुँचने के जितने भी भिन्न-भिन्न मार्ग क्यों न हों सभी मार्ग एक ही गन्तव्य (शिखर) पर पहुँचाते हैं। ठीक इसी प्रकार जितने भिन्न-भिन्न धर्म हैं चाहे ईसाई धर्म हो, चाहे इस्लाम और चाहे हिन्दू, सभी एक ही सत्य की ओर पहुँचाने में सहायक हैं। अतः स्वामीजी के अनुसार कोई भी धर्म किसी से हीन नहीं है। इसीलिए यह कहा जा सकता कि ईसाई धर्म, इस्लाम धर्म आदि वास्तव में भिन्न-भिन्न धार्मिक संप्रदाय है जिनमें एक ही धर्म या सत्य निहित है। स्वामीजी की यह भावना उनके उदार हृदय का परिचायक है।

(३) अपने तीसरे सन्देश में स्वामीजी कहते हैं "धर्म व्यक्ति के शोषण का कारण नहीं है।"

इतिहास का अध्ययन करने मे यह ज्ञात होता है कि सामन्त वर्ग के द्वारा नवाबों के द्वारा धर्म के माध्यम से व्यक्ति का शोषण किया गया था और आज भी शोषण हो ही रहा है। परन्तु जिस धर्म के नाम पर शोषण हुआ है या हो रहा है वह हमारे द्वारा बनाया हुआ धर्म है, वह मनुष्य की कृति है। हमने ही समाज में उच्च-निम्न वर्ग की व्यवस्था की है और यह कहते हैं कि हमारा धर्म निम्न वर्ग को अस्पृश्य मानता है। जिसने लकड़ी काटने वाले के यहाँ जन्म लिया है, वह जीवन भर लकड़ी ही काटेगा। जिसने डोम के यहाँ जन्म लिया है वह जीवन भर हमारे द्वारा घृणित बना रहेगा। परन्तु प्रश्न यह है कि ऐसा किस शास्त्र में लिखा है? राम चरित मानस में तो इसके विपरीत दृष्टिगोचर होता है। भरत जी अपने गुरु वशिष्ठ जी के साथ जब राम जी से मिलने जाते हैं तो मार्ग में निषाद से भेंट होती है। निषाद भरत जी को भूमिष्ठ होकर प्रणाम करता है। परिचय पूछने पर जब गुरु वशिष्ठ जी द्वारा यह बताया गया कि निषाद राम के भक्त हैं, तो भरत जी तुरन्त उसे भूमि से उठाकर गले से लगा लेते हैं। इसी प्रकार की घटना केवट साथ भी होती है यद्यपि छुआ-छूत का भेदभाव मानने वाले शायद उपर्युक्त घटनाओं के विषय में यह कहें कि भरत जी ने बाद में स्नान कर लिया था, बहुत हास्यास्पद।

स्वामी जी धर्म विषय में हमारी भ्रान्त धारणा को परिस्कृत करना चाहते थे, अतः उन्होंने शिक्षा को महत्व दिया। यदि हम शिक्षित हैं तो हम स्वयं अपने ग्रन्थों का अध्ययन कर यह जान सकते हैं कि वास्तव में हमारा धर्म-ग्रन्थ हमें किस बात की शिक्षा देता है। अशिक्षित होने से धर्म जो नहीं कहता हमारा शोषण करने वाले वही निरन्तर कहेंगे या वे बराबर धर्म को मलिन करते रहेंगे। हम सभी समान हैं। धर्म कभी भी उच्च-निम्न के भेदभाव को स्थान नहीं देता। शिक्षा के बिना हम मनुष्य होते हुए भी अपने को मनुष्य नहीं समझेंगे और हमारे ऊपर किये गये अत्याचारों को हम अकारण सहते चले जायेंगे।

एक बार स्वामी जी ने सड़क पर एक व्यक्ति को जो स्पष्टत फेरीवाला नहीं था, चीत्कार करते हुए देख एक

पथिक से उसके चीत्कार का कारण पूछा। उस पथिक ने स्वामी जी को समझाया कि चीत्कार करने वाला व्यक्ति चूंकि चांडाल है, उसकी छाया का स्पर्श भी मनुष्य को अपवित्र कर देता है। अतः वह शोर करके उच्च लोगों को अपनी उपस्थिति का ज्ञान करा रहा है जिससे वे सावधान हो जायें। इसे सुन कर स्वामी जी का मन करुणा से भर गया। यह कैसा घोर अत्याचार है कि हम मनुष्यों ने ही मनुष्य के अन्दर इतनी हीन भावना को जन्म दिया। स्वामीजी ने हमें यही सिखाया कि हिन्दू धर्म हमें कभी भी छुआ-छूत की शिक्षा नहीं देता। छुआ-छूत तो हिन्दू धर्म पर आरोपित है और धर्म की परिभाषा को स्पष्ट करते हुए स्वामीजी ने कहा धर्म, मानव के अन्दर पहले से ही विद्यामान ईश्वरत्व की अभिव्यक्ति है। इसके साथ-साथ स्वामीजी ने कहा कि हमारी धर्म के संबंध में जो भ्रान्त धारणा है उसका कारण है शिक्षा का अभाव। शिक्षा से ही हमारे अन्दर पूर्णता आयेगी क्योंकि स्वामीजी के अनुसार "शिक्षा मानव के अन्दर पहले से ही विद्यमान पूर्णता की अभिव्यक्ति है और हम धर्म को स्वयं ही जान पायेंगे।

(४) स्वामीजी ने अपने चतुर्थ शिक्षा सन्देश में हमें यह बताया कि धर्म और विज्ञान में कोई विरोध नहीं है —

हमारे मन में यदि ऐसी धारणा है कि धर्म और विज्ञान में विरोध है तो इस धारणा का आयात विदेश से हुआ। विदेश निःसन्देश अपनी तकनीकी प्रगति के उच्च शिखर पर है अतः उससे हमें यह कला सीखनी चाहिए। इसके प्रतिदान में हम उन्हें जो दे सकते हैं वह है अपना धर्म, अपनी आध्यात्मिकता के आदान-प्रदान से ही देश चलता भी है। जीवित रहने के लिए हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति विज्ञान के द्वारा होती है परन्तु प्रश्न यह है कि क्या जीवित रहना ही एक कला है? मरना उससे भी बड़ी कला है। मरता तो हर व्यक्ति है, परन्तु हंसते-हंसते मरना वास्तव में एक बहुत बड़ी कला है। अतः हमें जीवित रहना विदेशियों से सीखना अवश्य है, परन्तु मरने की कला उन्हें सिखानी है। विज्ञान के संबंध में यह प्रश्न उठ सकता है कि क्या यह हमें सुख ही सुख देता है? अलफ्रेड नोबेल ने डिनामाइट का आविष्कार किया परन्तु क्या उससे मात्र सुख ही मिला? विज्ञान का एक निषेधात्मक पक्ष भी होता है। विज्ञान के निषेधात्मक पक्ष को कौन झेल सकता है, इस प्रश्न के उत्तर में स्वामीजी ने कहा—"हमारी आध्यात्मिकता।" समुद्र मन्थन में अमृत के घट के साथ-साथ गरल भी निकला और यदि भगवान शंकर ने उसका पान न किया होता तो क्या देवता अमृत के सुख को भोगने में सफल होते? भगवान शंकर की तरह हमारी आध्यात्मिकता या हमारा धर्म विज्ञान का गरल पान करने में समान रूप से सक्षम है।

यह देखा जाता है कि जो देश जितना उन्नत है उसमें जितना भी प्राचुर्य है, वह देश उतना ही अशान्त है। स्वीडेन के संबंध में समाचारों में कभी निकला था—"भूस्वर्ग में भूचाल।" अर्थात् स्वीडेन जैसे देश के व्यक्ति जो सर्वसम्पन्न हैं, जो चूड़ान्त भोग विलास में लिप्त हैं, वे मानसिक अशान्ति के शिकार है, वे प्राचुर्य की समस्या से ग्रस्त हैं। ऐसा भला क्यों हो सकता है? यह इसलिए कि उनके भोग में धर्माभाव है। हमारे पास कुछ भी नहीं है, फिर भी हम अभाव में भी जी लेते हैं। उन्नत देश, समृद्धिशाली देश के व्यक्तियों को नींद की गोली लेनी पड़ती है, जबकि हम नींद से विरक्त हैं। प्राचुर्य होने के बाद भी व्यक्तियों की दुर्दशा आश्चर्यजनक है। रीडर्स डाइजेस्ट नामक पत्रिका में एक लेख के अनुसार १२ से १६ वर्षों के बच्चों के सर्वेक्षण से यह ज्ञात है कि उनमें से ६३% बच्चे बिना ट्रैंक्युईलाइजर (नींद की गोली) के नहीं रह सकते। क्या विज्ञान उसका शमन कर सकता है? क्या वैज्ञानिक ऐसी कोई गोली बना सकता है जिसके सेवन से यथार्थ अनौपाधिक मानसिक सुख की प्राप्ति हो जाये? सुख तो मन की वृत्ति है अतः मन को अनुशासित करने से मानसिक सुख मिल सकता है, जो धर्म के द्वारा ही संभव है। अतः विज्ञान में गति होते हुए भी किस दिशा में उसकी गति होगी इसका

निर्णायक धर्म ही है। अर्थात् यह कहा जा सकता है कि यदि विज्ञान में गति है तो धर्म में दिशा। यदि विज्ञान के पास पैर है तो धर्म के पास आंख। ये दोनों अन्धपंगु-न्यायेन अन्योन्याश्रित होकर ही कल्याणकारी हैं।

(५) अपने पंचम सन्देश में स्वामीजी कहते हैं— "धर्म ही सेवा का रूप लेता है" स्वामीजी का कहना है कि धर्म व्यवहार में उतरा है या नहीं, इसकी पहचान यही है कि उसने सेवा का रूप धारण किया अथवा नहीं। ऐसा इसलिए कि यदि हम धार्मिक हैं तो सभी में ईश्वर को देखेंगे और तभी सबकी सेवा ईश्वर की सेवा होगी। तभी हम दूसरे के दुःख से व्यथित भी होंगे। दूसरे के दुःख में हम अपना दुःख देखेंगे। परन्तु स्वामीजी उस ईश्वर को नहीं मानते जो यह कहता कि वह इस समय हमारा पेट नहीं भर सकता, अर्थात् वर्तमान में वह हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकता या हमारे कष्ट को दूर नहीं कर सकता और स्वर्ग उन कमियों की पूर्ति का आश्वासन देता है। स्वामीजी इस संदर्भ में भागवत में रन्तिदेव की कथा का उद्धरण देते हैं। रन्तिदेव को जब भगवान ने राज्य देना चाहा तो उन्होंने अस्वीकार किया। स्वर्ग देने की कामना की तो उसका बहिष्कार किया। यहां तक कि परम श्रेष्ठ पुरुषार्थ अर्थात जन्म-मरण से मुक्ति के प्रस्ताव को भी ठुकरा दिया और कहा "भगवान मैं तुम्हारी तरह बैठा-बैठा टुकुर-टुकुर ताकना नहीं चाहूँगा वरन् सबके हृदय में बैठकर सबका दुःख पान करना चाहूँगा।" यही सच्चा धर्म है।

(६) स्वामीजी के षष्ठ सन्देश के अनुसार—धर्म ने नारी जाति को हीन नहीं बनाया, यह भी हमारी ही कृति है। स्वामीजी के अनुसार इस भ्रम को तोड़ना है कि नारी हीन है क्योंकि वह न केवल धर्म के विरोध में है वरन् यह हमारी उन्नति में बाधक भी है। मात्र नर जागरण से हमारी उन्नति नहीं हो सकती। नर और नारी पक्षी के दो पंख हैं। पक्षी का यदि एक ही पंख हो तो क्या वह उड़ पायेगा? दोनों पंखों के होने पर एवं समान रूप से शक्तिशाली होने पर ही पक्षी अपनी उड़ान भर सकता है। अतः स्वामीजी ने नारी को जगाने पर अत्यन्त बल दिया। न केवल पुरुष ने नारी को अबला कह-कह कर उसे दुर्बल बनाया, नारी स्वयं भी अपने को दुर्बल समझती है (यद्यपि इसके लिए उत्तरदायी हमारा समाज है)। स्वामीजी का कहना है "भारत की नारी किसी से कम नहीं है, उसे गरिमा प्रदान करो।" ये तो हम हैं जिन्होंने नारी को पतिता, दुर्बल अतः ताड़न की अधिकारी बनाया है। नारी ही तो माँ है। अतः दुर्बल होने से उससे सबल पुत्र कैसे हो सकता है? इसीलिए देश की उन्नति या किसी प्रकार की उन्नति के लिए नर जागरण के साथ नारी जागरण समान रूप से महत्वपूर्ण है। इसी नारी-जागरण के लिए स्वमीजी ने विदेशी महिला Margeret Nobel यानी भगिनी निवेदिता की सहायता ली। भगिनी निवेदिता पर ही यह भार सौंपा कि वह सारी नारी जाति में इस भ्रान्त भावना को कि वह दुर्बल है, पतिता है, उसे दूर कर गरिमा प्रदान करें।

(७) हमारे मन में यह धारणा हो सकती है कि हमारा धर्म मात्र हमारा ही कल्याण करने वाला है, परन्तु यह धारणा भ्रमपूर्ण है। अतः स्वामीजी अपने सप्तम सन्देश में कहते हैं—"हिन्दू धर्म पूरे विश्व के कल्याण के लिए है।"

शास्त्रों में मातृदेवो भव, पितृदेवो भव कहा गया है। परन्तु स्वामीजी कहा करते थे दरिद्र देवो भव, पीड़ित देवो भव और राष्ट्र देवो भव। अपने देश के प्रति स्वामीजी को अगाध प्रेम था। अतः विश्व में यदि भारत का कोई स्थान नहीं है तो वह अपना भी स्थान नहीं मानते थे। स्वामीजी को देश के प्रति इतनी दुर्बलता का कारण भला क्या हो सकता है? स्वामीजी कहा करते थे—"यदि भारत की मृत्यु हो जायेगी तो धर्म और अध्यात्म भी सम्पूर्ण विश्व से समाप्त हो जायेगा।" विदेश में धर्म है परन्तु धर्म के आचरण का अभाव है। धर्म का आचरण तो भारतवासी करते हैं, अतः विश्व को जीवित रखने के लिए भारत को जीवित रखना है और भारत को जीवित रखने के लिए उसके प्राणकेन्द्र धर्म को जीवित रखना है। ●

स्वामी विवेकानन्द ने कहा था

श्री अटल

हाल ही में दिल्ली में एक पिता ने अपनी डेढ़ वर्षीय मासूम बच्ची को, नाटकीय ढंग से परिवार से अलग करने की कोशिश की ! उसने ऐसा करने के पीछे दो लड़कियां हो जाने के 'बोझ' को बरदाश्त न कर पाने से उत्पन्न भय को बताया है। इस पिता के बयान पर भरोसा किया जाए, (अविश्वास का कोई कारण भी नहीं दिखाई देता) तो बच्ची को चंडीगढ़ के पार्क में छोड़ने से पहले उसने बच्ची को चप्पलें खरीदवाई, खिलाया पिलाया, तथा उसके सुरक्षित हाथों में पहुँच जाने तक, दूर खड़ा उस पर नजर रखे रहा। इसका मतलब वह निर्दयी तो नहीं ही कहा जा सकता, अलबत्ता दया और सहानुभूति का पात्र अवश्य ही है ! आखिर क्या कारण है कि आज लड़की को बोझ, समझकर एक पिता उससे छुटकारा चाहता है। इस पिता पर न जाने क्यों गुस्सा नहीं आता ! क्योंकि, उसका यह निर्णय समाज में प्रचलित मूल्यों, मान्यताओं से निर्देशित रहा है। सैकड़ों हजारों भ्रूणों की हत्याएं गर्भ में कर दी जाती हैं। महिलाओं के प्रति होने वाले अत्याचार, आज रोजमर्रा की बात हो गये हैं। क्या कोई भी समाज, देश और जाति, महिलाओं का अपमान और उपेक्षा कर, विकास और उत्थान कर सकता है।

क्रांतिकारी चिंतक युगप्रवर्तक स्वामी विवेकानन्द ने नौ दशक पहले कहा था—

इस देश में पुरुष और स्त्रियों में इतना अंतर क्यों समझा जाता है यह समझना कठिन है। वेदांत शास्त्र में कहा है, एक ही चित् सत्ता सर्वभूत में विद्यमान है। तुम लोग स्त्रियों की निंदा ही करते हो। उनकी उन्नति के लिए तुमने क्या किया, बोलो तो ? स्मृति आदि लिखकर, नियम-नीति में आबद्ध करके इस देश के पुरुषों ने स्त्रियों को एकदम बच्चा पैदा करने वाली मशीन बना डाला है। महामाया की साक्षात मूर्ति – इन स्त्रियों का उत्थान न होने से क्या तुम लोगों की उन्नति संभव है ?

किस शास्त्र में ऐसी बात है कि स्त्रियां ज्ञान-भक्ति की अधिकारिणी नहीं होंगी ? भारत का अधः पतन उसी समय से हुआ, जब ब्राह्मण पण्डितों ने ब्राह्मणेतर जातियों को वेदपाठ का अनाधिकारी घोषित किया, और साथ ही, स्त्रियों के भी सभी अधिकार छीन लिये। नहीं तो, वैदिक युग में, उपनिषद् युग में, मैत्रेयी, गार्गी आदि प्रातः स्मरणीय स्त्रियां, ब्रह्मविचार में ऋषितुल्य हो गयी हैं। हजार वेदज्ञ ब्राह्मणों की सभा में गार्गी ने गर्व के साथ याज्ञवल्क्य का ब्रह्मज्ञान के शास्त्रार्थ के लिए आह्वान किया था। इन सब आदर्श विदुषियों को जब उस समय अध्यात्म ज्ञान का अधिकार था, तब फिर आज भी स्त्रियों को वह अधिकार क्यों न रहेगा ? एक बार जो हुआ वह फिर अवश्य ही हो सकता है। इतिहास अपने को दोहराता है।

स्त्री-पुरुषों में बाह्य भेद रहने पर भी स्वरूप में कोई भेद नहीं। अतः यदि पुरुष ब्रह्मज्ञ बन सके, तो स्त्रियां क्यों न ब्रह्मज्ञ बन सकेंगी।

देशाचार के घोर बंधन से प्राणहीन, स्पन्दनहीन बनकर लड़कियां कितनी दयनीय बन गयी हैं, स्त्रियों की इस दुर्दशा के लिए तुम्हीं लोग (समाज) जिम्मेवार हो। देश की स्त्रियों को जागृत करने का भार भी तुम्हीं पर है।

स्वामी विवेकानंद की इच्छा थी कि बड़ी संख्या में शिक्षिकाएं प्रचारिकाएं आगे आएं और

(शेष पृ० ६० पर)

स्वामी विवेकानन्द की महानता

—स्वामी ब्रह्मेशानन्द
रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

"काल के दीर्घ अन्तराल से यदा कदा अन्यलोक का कोई पथिक हमारे इस ग्रह पर अचानक आ पड़ता है। वह अपने साथ इस दुखपूर्ण जगत् में उस अतीत लोक के प्रकाश ऐश्वर्य एवं शक्ति का कुछ अंश लेकर आता है। वह मानवों के साथ विचरण करता है लेकिन यहां उसे अपनापन नहीं लगता। वह एक अजनबी, एक यात्री होता है, जो केवल एक रात ही ठहरता है।

वह अपने आस पास के लोगों के जीवन में हिस्सा बटाता है, उनके सुख-दुख में प्रवेश करता है, उनके साथ हंसता और रोता है, लेकिन इन सब के बीच वह यह नहीं भूलता कि वह कौन है, कहां से आया है और उसके आने का उद्देश्य क्या है। वह अपने देवत्व को कभी नहीं भूलता। उसे यह स्मरण रहता है कि वह महान ज्योतिर्मय भव्य आत्मा है। वह जानता है कि वह जिस अमर एवं उच्चतम लोक से आया है, उसे प्रकाश के लिए चन्द्र और सूर्य की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वह "ज्योतिषांमपि तज्ज्योतिः" से प्रकाशित है।

ऐसे महापुरुष की किसी से तुलना नहीं की जा सकती, क्योंकि वे सभी आदर्शों एवं मापदंडों के परे होते हैं। अन्य लोग मेधावी हो सकते हैं। लेकिन इनका मस्तिष्क ज्ञानोदीप्त होता है क्योंकि उनमें समग्र ज्ञान के उत्स के साथ सीधा संपर्क स्थापित करने की क्षमता होती है। सामान्य मानवों के ज्ञानार्जन की धीमी प्रक्रिया से वे सीमित नहीं होते। अन्य लोग महान हो सकते हैं; वे अपनी श्रेणी के अन्य लोगों की तुलना में अधिक योग्यता, शक्ति, मेधा के कारण, योग्य, शक्तिशाली और गुणी हो सकते हैं। यह केवल तुलना का प्रश्न है। एक सन्त सामान्य व्यक्ति से अधिक पवित्र, सज्जन और एकाग्र होता है। लेकिन स्वामी विवेकानन्द के विषय में तुलना की कोई संभावना नहीं है। वह अपने आप में एक पृथक श्रेणी के थे। वे एक भिन्न स्तर के महापुरुष थे। वे इस पृथिवी के थे ही नहीं। वे एक दिव्यात्मा थे जो एक विशेष उद्देश्य के लिए अन्य उच्चतर लोक से अवतरित हुए थे।" ये उद्‌गार हैं कुमारी क्रिस्टीन के जो स्वामीजी की अमेरिकन शिष्या थीं। कुछ इसी प्रकार की बात श्रीमती लेगेट ने स्वामी विवेकानन्द के बारे में कही थी। श्रीमान् एवं श्रीमती फ्रांसिस लेगेट स्वमाजी के घनिष्ट मित्रों में से थे। स्वामी जी की महासमाधि के बाद एक बार श्रीमती लेगेट जब भारत आयीं तो उनसे बेलुड़ मठ में एक संन्यासी ने पूछा कि आप तो विश्व के अनेक महान नेताओं, राजा-महराजाओं, ड्यूक, फील्ड मार्शल, दार्शनिक, वैज्ञानिक आदि से मिली हैं, आप उनकी तुलना में स्वामीजी को कैसा समझती हैं? उत्तर में श्रीमती लेगेट ने जोर देकर कहा, "लेकिन वे तो पैगंबर (अवतार) थे। "(But he was a Prophet.)"

वस्तुतः स्वामीजी की महानता का अंकन मानवी मापदंडों से करना संभव नहीं है। वे मानो एक नितान्त भिन्न स्तर के व्यक्ति थे, जिनका मूल्यांकन करने में बुद्धि कुंठित सी हो जाती है, और तब हमें यह मानना पड़ता है जैसा कि भगिनी क्रिस्टीन ने कहा है, कि वे किसी अन्य लोक के प्राणी थे, जो थोड़ी देर के लिए पृथिवी पर विचरण करने आये थे, और सभी को चकाचौंध करके चले गये।

महानता एक तुलनात्मक विशेषण है, जिसका प्रयोग सामान्यतः उन वस्तुओं अथवा व्यक्तियों के साथ किया जाता है, जो गुण सामर्थ्य कर्म जाति अथवा अन्य किसी कारण, अन्य वस्तुओं की तुलना में बड़े या श्रेष्ठ हों।

मनुष्यों में जो व्यक्ति बल, शील, गुण, धर्म, धन-सम्पत्ति, ऐश्वर्यादि में अपने सह मनुष्यों से अधिक सम्पन्न होता है वह उस उस क्षेत्र में महान कहलाता है। यह महानता लौकिक तथा आध्यामिक इन दो प्रकार की हो सकती है। धन संपत्ति, ऐश्वर्य, वाग्मिता, विद्वत्ता, शारीरिक बल या सौन्दर्य आदि के द्वारा जो महानता है, वह लौकिक कहलाएगी। लेकिन त्याग, वैराग्य, भक्ति, सरलता, संयम आदि संतोचित गुणों के कारण होने वाली महानता को आध्यात्मिक महानता की संज्ञा दी जा सकती है। ये लौकिक अथवा आध्यात्मिक विशेषताएँ या तो किसी में नैसर्गिक रूप से विद्यमान हो सकती हैं अथवा व्यक्ति उनका अभ्यास एवं प्रयत्न द्वारा अर्जन एवं विकास कर सकता है।

आध्यात्मिक महापुरुष भी दो प्रकार के होते हैं, प्रथम तो वे जो अपनी साधना के फलस्वरूप सिद्धिलाभ करते हैं। ये जीवन मुक्त, स्थित प्रज्ञ, या ब्रह्मज्ञानी कहलाते हैं। दूसरे वे लोग हैं जो जन्म से ही सिद्ध होते हैं तथा केवल लोक कल्याण के लिए ही जन्म ग्रहण करते हैं। ये ईश्वर कोटि अथवा अवतारी महापुरुष कहलाते हैं।

स्वामी विवेकानन्द की विशेषता यह है कि उनमें ये दोनों तुलनात्मक मानवी महानताएँ तो हैं ही, साथ ही कुछ ऐसी बातें भी हैं जिनके कारण हमें बाध्य होकर उन्हें मानव से उच्चतर स्तर के, दैवी स्तर के महापुरुष, ईश्वर कोटि मानना पड़ता है। इसका संकेत स्वयं उनके गुरु श्रीरामकृष्ण के वचनों में भी प्राप्त होता है। श्रीरामकृष्ण ही एक मात्र ऐसे व्यक्ति थे जो स्वामीजी का ठीक-ठीक मूल्यांकन कर सकते थे। कभी कभी श्रीरामकृष्ण स्वामी जी की तुलना अन्य महापुरुषों से करते हुए कहते थे, कि केशव चन्द्र सेन जिस एक गुण के द्वारा विश्व विख्यात हुए हैं, नरेन्द्र (स्वामी विवेकानन्द) में उस तरह के सोलह गुण हैं। अन्य लोग यदि चतुर्दल, अष्टदल या शतदल पद्म हैं तो नरेन्द्र सहस्रदल पद्म है। अन्य लोग यदि छोटे मोटे तलाब, बावड़ी है, तो नरेन्द्र बड़ा सरोवर है। वह नित्य सिद्ध और ईश्वर कोटि का है। नरेन्द्र इतना विद्वान है पर उसे माया-मोह नहीं है—मानो कोई बन्धन ही नहीं है। बड़ा अच्छा आधार है। एक ही आधार में बहुत से गुण रखता है गाने-बजाने लिखने-पढ़ने सब में बहुत प्रवीण है। इधर जितेन्द्रिय भी है—कहता है, विवाह नहीं करूँगा।

गीता के विभूति योग की तरह, जहाँ भगवान अपनी सत्ता को सभी जातियों की श्रेष्ठतम वस्तुओं में विशेष रूप से प्रदर्शित करते हैं, उसी तरह मानों श्रीरामकृष्ण स्वामीजी की तुलना ही नहीं कर रहे, बल्कि इनके दैवत्व की ओर इंगित कर रहे हैं।

स्वामी जी दिव्यलोक के प्राणी थे, जगत कल्याण के लिए अवतरित हुए थे, इसका उल्लेख भी श्रीरामकृष्ण ने किया है। वे उन्हें सप्तर्षि में से एक, शिव के अवतार, नर-ऋषि अथवा अखंड के राज्य के निवासी आदि समय-समय पर कहा करते थे।

अगर श्रीरामकृष्ण एवं स्वामीजी के गुरुभाइयों की स्वामीजी से सम्बन्धित उक्तियों का संकलन ही किया जाये तो उनकी लौकिक एवं आध्यात्मिक महानता एवं उनके दैवी स्वरूप का पर्याप्त प्रमाण प्राप्त हो जायेगा। इसके अतिरिक्त स्वामीजी के भक्त उनकी जीवनी से स्वयं स्वामी जी के अद्वितीय चरित्र का अध्ययन कर सकते हैं। प्रस्तुत लेख में हम स्वामी जी के जीवन की कतिपय घटनाओं के माध्यम से उनके उदात्त चरित्र के कुछ पक्ष प्रस्तुत करने का प्रयत्न करेंगे।

छोटी-छोटी बातों में महानता

स्वामी जी स्वयं कहा करते थे कि जब समाज की दृष्टि हमारी ओर हो, तब तो कोई भी व्यक्ति महान कार्य कर सकता है। लेकिन वास्तविक महानता तो छोटी-

छोटी बातों में प्रदर्शित होती है। अगर किसी का चरित्र देखना चाहते हो तो उसके दैनन्दिन जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं का अवलोकन करो। इस सिद्धान्त के अनेक दृष्टान्त, स्वयं स्वामी जी के जीवन में प्रचुर हैं।

सामान्यतः जिन वस्तुओं का हम दीर्घकाल तक उपयोग करते हैं, उनके साथ हमारी आसक्ति सी हो जाती है। एक फाउन्टेनपेन, छड़ी, बैग, घड़ी आदि जो वर्षों से हमारे साथ रहे हैं उनको हम त्यागना नहीं चाहते, तथा उनके नष्ट होने अथवा चोरी हो जाने पर हमें कष्ट होता है। लेकिन महापुरुषों का यह लक्षण होता है कि वे किसी भी वस्तु से आसक्त नहीं होते। जिस लाठी को लेकर स्वामी जी ने वर्षों सारे भारत में भ्रमण किया था किसी के माँगने पर उन्होंने तत्काल उसे दे दिया। स्वामी जी के पास सोने की एक जेबघड़ी थी, किसी अनजान युवक को उसकी ओर ललचायी नजरों से देखते देख, स्वामी जी ने उसे अपने पास बुलाया और कहा कि जो वस्तु तुम्हें पसन्द आ गयी है वह तुम्हारी हो गयी। यह कहकर भौंचक्के हो रहे उस युवक को वह घड़ी भेंट कर दी।

एक बार परिव्राजक जीवन में स्वामी जी तथा उनके अनेक गुरु भाइयों ने मेरठ में अनेक दिन एकत्र वास किया था। एक दिवस वहाँ स्वामीजी ने खिचड़ी बनायी। स्वामी जी को खिचड़ी अत्यधिक प्रिय थी, लेकिन उस दिन उन्होंने सारी खिचड़ी अपने गुरु भाइयों को खिला दी। घटना छोटी सी है, लेकिन इससे स्वामी जी के विशाल हृदय का आभास मिलता है।

अपने दोषों को स्वीकार करना

सामान्यतः बड़ा से बड़ा व्यक्ति भी अपने दोषों को स्वीकार करने में हिचकता है। विशेषकर सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त व्यक्ति अपने दुर्गुणों को जानते हुए भी प्रकट करना नहीं चाहता और यदि कोई दूसरा व्यक्ति उन दोषों को प्रकट करे, तो उन्हें स्वीकार करने के बदले उन्हें छिपाने या स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया जाता है।

अमेरिका से लौटकर भारत में नाना स्थानों में व्याख्यानादि देने के बाद स्वामीजी अल्मोड़ा में विश्राम कर रहे थे। उस समय बंगाल के प्रसिद्ध शिक्षाविद अश्विनी कुमार दत्त स्वामी जी से मिलने आये। वार्तालाप के दौरान अश्विनी बाबू ने स्वामीजी से पूछा कि "दक्षिण भारत के पण्डितों ने जब आप को म्लेच्छ कहा था तो आप ने प्रत्युत्तर में उन्हें म्लेच्छों का म्लेच्छ कहा, तो क्या ऐसा कहना आपके लिए उचित था?" स्वामी जी ने तत्काल उत्तर दिया "मैंने कब कहा कि ऐसा कहना मेरे लिए उचित था? मैंने आवेग में आकर ऐसा कहा था, लेकिन मैंने कभी उसे उचित नहीं ठहराया। वह मेरी गलती थी।" इसपर अश्विनी बाबू ने स्वामी जी का आलिंगन करते हुए कहा "अब मैं समझा कि तुम कितने महान हो तथा लोगों के इतने प्रिय क्यों हो।"

पवित्रता

व्यक्ति की महानता की परीक्षा प्रलोभनों एवं विपरीत परिस्थितयों में होती है। शिकागो धर्म महासभा के प्रारम्भिक अधिवेशन में ज्योंही स्वामी विवेकानन्द के द्वारा "Sisters and brothers of America" इन शब्दों का उच्चारण हुआ तो सभागृह तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठा, जो दो मिनट तक होती रही। भाषण के बाद सैकड़ों महिलाएँ स्वामी जी का अभिवादन करने, उनसे हाथ मिलाने अथवा उनका वस्त्र स्पर्श करने के लिए उनकी ओर बढ़ चलीं। यह देख सभा में उपस्थित एक वृद्धा ने मन ही मन कहा "पुत्र यदि तुम इस प्रलोभन के वार को सहन कर सको तो तुम सचमुच देवता हो।' परवर्ती काल में इसी वृद्धा ने अपने घर में स्वामी जी का एक बड़ा चित्र लगवाया था तथा स्वामी जी ने उनका आतिथ्य स्वीकार कर कई दिनों तक उनके घर में निवास भी किया था। यह स्पष्ट ही है कि स्वामी जी ने सभी प्रकार के काम-कांचन सम्बन्धी प्रलोभनों पर अनायास ही विजय प्राप्त की थी। अमेरिका में उनका प्रवचन सुनकर एक करोड़पति युवती, अपनी समस्त सम्पत्ति सहित स्वामी जी की सेविका बनने को प्रस्तुत हुई।

स्वामी जी ने विनम्रता पूर्वक उसके प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया।

एक बार किसी ने स्वामी जी से पूछा कि शिकागो धर्म महासभा में प्रथम प्रवचन के पूर्व "Brothers and sisters of America" बोलते समय क्या उन्होंने किसी, दैवी अथवा योगजन्य शक्ति का प्रयोग किया था, जिसके कारण समग्र सभा विमुग्ध हो गयी थी? इनके उतर में स्वामी जी ने स्वीकार किया कि यह कार्य एक शक्ति विशेष के द्वारा सम्पन्न हुआ था—और वह थी ब्रह्मचर्य की पवित्रता की शक्ति। उनकी सफलता का रहस्य यह था कि उन्होंने अपने समग्र जीवन में कभी कोई अपवित्र विचार नहीं सोचा। हम सामान्य जन जो प्रतिदिन वर्षों तक अपने अपवित्र विचारों के साथ जूझते रहते हैं, क्या स्वामी जी की इस महानता की कल्पना भी कर सकते हैं?

दूसरों को महान बनाने की क्षमता

तुलनामूलक सांसारिक महानता में स्वाभाविक रूप से किसी न किसी को अनिच्छा होते हुए भी नीचा दिखाना होता है। कुछ लोग तो दूसरों को नीचा दिखाकर महान होना चाहते हैं। लेकिन सच्चा महान व्यक्ति तो वह है जो अपनी महानता को छिपाकर दूसरों को महान बनाये। स्वामी विवेकानन्द भी ऐसे ही महापुरुष थे जो सदा दूसरों को बड़ा बनाना चाहते थे, तथा दूसरों की प्रगति एवं उन्नति में हार्दिक प्रसन्नता का अनुभव करते थे। वस्तुतः वे तो दिल से यह चाहते थे कि उनके गुरुभाई तथा शिष्य उनसे भी महान होवें। वे इस बात की कल्पना ही नहीं कर सकते थे कि उनमें दूसरों की अपेक्षा अधिक गुण है, या कोई विशेषता हैं। सभी में वह सर्वशक्तिमान् सर्वज्ञ आत्मा समान रूप से विद्यमान है, अतः सभी में महान बनने की समान संभावनाएँ है—यही बात उन्होंने सदा लोगों से कही। प्रत्येक मानव के देवत्व एवं महान संभावनाओं में उनका इतना दृढ़ विश्वास था कि जो भी उनके सान्निध्य में आता था, उसमें भी यह भाव, आत्मविश्वास एवं सर्व सामर्थ्य का भाव अनायास ही संचारित हो जाता था। तात्पर्य यह कि स्वामी जी के निकट आने पर व्यक्ति अपने को उनकी तुलना में छोटा नहीं समझता था बल्कि उनके स्तर पर उन्नीत हो जाता था।

आत्मविश्वास का भाव संचारित करने के अतिरिक्त वे ऐसे प्रयत्न भी करते थे जिससे उनके गुरुभाई एवं शिष्य अपनी अन्तर्निहित शक्ति को अभिव्यक्त कर सकें। लंदन में एक बार उन्हें एक सभा में भाषण देना था। इस बात की सूचना भी दी जा चुकी थी, किन्तु अन्तिम क्षण में उन्होंने अपने गुरुभाई स्वामी अभेदानन्द जी को बोलने का आदेश दिया, तथा बाद में उनकी सफलता पर हार्दिक प्रसन्नता का अनुभव किया।

जीवन लीला संवरण के कुछ दिनों पूर्व एक दिन स्वामी जी ने अपनी शिष्या कुमारी मेक्लाइड को, एक बड़े वृक्ष को दिखाते हुए कहा था: देखो उस बड़े वृक्ष की छाया में छोटे वृक्ष जिस तरह बढ़ नहीं सकते, उसी तरह मेरे रहते गुरुभाई भी अपनी महानता अभिव्यक्त नहीं कर सकते। अतः यह अच्छा हो कि मैं हट जाऊँ। इसके कुछ दिनों बाद ही स्वामी जी महासमाधि में लीन हो गये। दूसरों को महान बनाने के लिए स्वयं को विश्व मंच से हटा लेने से बढ़कर महानता और क्या हो सकती है?

लेकिन स्वामी जी का यह कार्य मृत्युपर ही समाप्त नहीं हो गया। उन्होंने तो कहा था, "यह संभव है कि मैं देह को एक जीर्ण वस्त्र की तरह त्यागकर उससे बाहर आ जाना उचित समझूँ। लेकिन मैं अपना कार्य बन्द नहीं करूँगा। मैं सर्वत्र मनुष्यों को तबतक प्रेरणा प्रदान करता रहूँगा जब तक विश्व यह न जान ले कि वह परमात्मा के साथ एक है। स्वामी विवेकानन्द अभी भी असंख्य लोगों को अपनी वाणी और रचनाओं के माध्यम से प्रेरित कर रहे हैं। लेकिन ऐसे भी कई दृष्टान्त हैं जहाँ स्वामीजी ने दिव्य दर्शन प्रदान

करके लोगों को प्रेरणा, मार्ग दर्शन एवं विशेष शक्ति प्रदान की है। वस्तुतः स्वामी विवेकानन्द का जन्म तो दूसरों को महान बनाने के लिए हुआ था। जिसके सामान्य इशारों ने सैकड़ों गांधी, नेहरू, सुभाष, अरविन्द को महान बनाया, उनकी तुलना हम गांधी और नेहरुओं से कैसे कर सकते है ?

इतना सब होते हुए भी स्वामी जी अपनी स्वयं की महानता के प्रति पूर्णरूप से उदासीन थे। यह महानता उनके लिए इतनी स्वाभाविक थी कि मानो उसका उन्हें भान भी नहीं था। विश्व विजयी, विश्व विख्यात होने के बाद भी वे कलकत्ता की सड़कों पर नंगे पैर चलने, चार आने का चना मुरमुरा सड़क के किनारे खड़े खोमचे वाले से खरीद कर चबाने में कभी संकोच का अनुभव नहीं करते थे। वे दूसरों में महानता देखने एवं उन्हें महान बनाने में इतने व्यस्त थे कि उनके पास अपनी महानता को देखने अथवा उसका मूल्यांकन करने का समय ही नहीं था।

उपसंहार

स्वामी विवेकानन्द एक महान देशभक्त, महान समाज सुधारक महान वक्ता, विद्वान, वेदज्ञ, ऋषि, महान चिन्तक, महान गायक आदि थे। वे एक युगाचार्य थे, महान योगी, महानभक्त, महान ज्ञानी एवं महान कर्मी भी थे। इन सर्वांगीण महानताओं के होते हुए भी उन्होंने कभी इनके साथ तादात्म्य स्थापित नहीं किया कभी अपने को यह सब नहीं समझा। वे तो स्वयं को सदा सर्वदा अखंड-सच्चिदानन्द ब्रह्म समझा करते थे—सदा उस अनन्त के स्तर पर विद्यमान रहते थे, जो अप्रमेय तथा अतुलनीय है। वैसे तो सभी ब्रह्मज्ञानी ब्रह्म स्वरूप ही हो जाते हैं। लेकिन जितनी मात्रा में एवं जितने अधिक प्रकार से स्वामीजी उस अनन्त सच्चिदानन्द को अभिव्यक्त, वाह्य रूप से प्रकाशित कर सके थे, उतना आजतक किसी ने नहीं किया है। उनके संस्पर्श में आने, इनके जीवन एवं साहित्य का अध्ययन करने एवं ध्यान करने से हम तत्काल इस अखंड सत्ता के संस्पर्श में आ जाते हैं, उस 'महतो महीयान्' का आभास पा जाते हैं, जो हम सभी की एक मात्र वास्तविक सत्ता है।

□

(पृष्ठ ५५ का शेषांश)

स्त्री शिक्षा का प्रचार करें। स्वामी जी मानते थे कि स्त्रियों में जागृति एकदम नहीं आ जाएगी 'शिक्षा देकर (स्त्रयों को) छोड़ देना होगा। उसके बाद वे स्वयं ही सोच समझ कर जो उचित होगा, करेंगी। विवाह करके गृहस्थी में लग जाने पर भी वैसी लड़कियां अपने पतियों को उच्च भाव की प्रेरणा देंगी और वीर पुत्रों की जननी बनेंगी।

'स्त्रियों में समय आने पर यदि एक भी ब्रह्मज्ञ बन सकी, तो उसकी प्रतिभा से हजारों स्त्रियां जाग उठेंगी और देश तथा समाज का कल्याण होगा। 'सीता गार्गी' सावित्री का फिर से आविर्भाव हो सकेगा।

जहाँ स्त्रियों का समान नहीं होता, वे दुखी रहती हैं, उस परिवार की, उस देश की उन्नति की आशा नहीं की जा सकती। इसीलिए इन्हें पहले उठाना होगा। इनके लिए एक आदर्श मठ की स्थापना करनी होगी। जहां धर्मपरायणता, त्याग और संयम तथा सेवा धर्म उनके जीवन का व्रत होगा। इस प्रकार आदर्श जीवन को देख कर कौन उनका सम्मान न करेगा ?

स्वामी अद्भुतानन्द (लाटू महाराज) की जीवन कथा

—चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय
अनुवादक—स्वामी विदेहात्मानन्द
रामकृष्ण मठ, नागपुर

यह सुनकर लाटू महाराज उद्विग्न होकर बोल उठे —'आप चले आइए महाराज ! इससे मेरा अकल्याण होगा। आपको वह सब खोजना उचित नहीं। आज लगता है मेरा सारा दिन हो बिल्कुल खराब जाएगा।'

उनकी बात पर ठाकुर ने हँसते हुए कहा—'उससे क्या दिन खराब जाता है रे ? जिस दिन भगवान का नाम नहीं होता, वही दिन खराब जाता है।'

दक्षिणेश्वर में रहते समय सेवक लाटू प्रतिदिन प्रभातकाल में ठाकुर का दर्शन और उन्हें प्रणाम करने के बाद ही अपना दैनन्दिन कार्य आरम्भ करता था। जिस दिन वह दक्षिणेश्वर में नहीं रहता उस दिन वह बड़े सवेरे मन ही मन ठाकुर को स्मरण और प्रणाम कर लेता था। उसके बाद लाटू शौच आदि से निपट कर नौबतखाने में जाकर माताजी को प्रणाम करता और क्या क्या करना होगा जान लेता। प्रायः प्रतिदिन ही वह माँ के लिए गंगाजल लाता था। दक्षिणेश्वर के प्रारम्भ के दिनों में लाटू माँ के कार्य निपटाकर हनुमन्त सिंह के अखाड़े में कुश्ती लड़ने को जाया करता था। बाद में ठाकुर के आदेश पर उसने कुश्ती बन्द कर दी थी। बाद के दिनों में सुबह के समय उसने जप में बैठना आरम्भ कर दिया था। जब भी उसे समय मिलता वह निर्जन स्थान में अकेले जाकर जप करता अथवा भजन की दो-चार पंक्तियाँ गुनगुनाता रहता। उसके प्रिय दो भजन हमें ज्ञात हैं—"मनुवा रे ! सीताराम भजन कर लीजिए। भूखे को अन्न, प्यासे को पानी, नंगे को वस्त्र दीजिए।" और दूसरा है—"रामनाम सुखधाम भज ले मनुवा।" जिस दिन उसे कहीं अन्यत्र जाना होता, उस दिन रास्ता चलते नाम और गाना भी चलता रहता। तदुपरान्त पूर्वाह्न में वह स्नानार्थ जल लाकर ठाकुर को तेल मलने बैठता। ठाकुर को स्नान कराने के बाद लाटू स्वयं भी गंगास्नान करने को जाता। स्नान हो जाने पर वह (शिव, विष्णु और काली के) मन्दिरों में जाकर देवी-देवताओं को प्रणाम करने और मन्दिरों की प्रदक्षिणा करने के बाद ही सूखे वस्त्र पहनता। भोजन के पूर्व फिर जप-ध्यान को बैठता। तत्पश्चात् ठाकुर को हवा डुलाता और जब तक ठाकुर उसे अन्यत्र जाने को नहीं कहते तब तक लाटू उसी कमरे में बैठकर प्रतीक्षा करता। दोपहर के बाद प्रायः प्रतिदिन ही ठाकुर उसे शिवमन्दिर अथवा गंगाजी के किनारे भेज देते। वहाँ थोड़ा समय बिताने के पश्चात् लाटू अपराह्न में थोड़ा सो लेता था। इसीलिए लाटू अधिकांश दिन भक्तमण्डली के बीच दृष्टिगोचर नहीं होता था। सन्ध्या होने के थोड़ा पहले लाटू पुनः नौबत में माताजी के पास जाता था। वहाँ से छुट्टी मिलने पर वह ठाकुर के पास आकर बैठता था। सन्ध्या को देवी-देवताओं की आरती देखने के बाद वह (अन्त के कई वर्ष) विष्णु मन्दिर में जाकर कीर्तन में योग देता था।) किसी किसी दिन वह ठाकुर के कमरे में भी कीर्तन कियाा करता था। रात में आहार आदि के पश्चात् वह ठाकुर की चरणसेवा करता। गरमी के दिनों में पंखा लेकर हवा करता। ठाकुर के निद्राभग्न हो जाने पर अथवा जाने का आदेश देने पर ही वह उस कमरे से निकलता था।

ठाकुर जिस दिन उसे रात भर जपध्यान करने का आदेश देते, उस दिन लाटू वहीं बैठकर सारी रात बिता देता। ब्राह्ममुहुर्त में वह पुनः ठाकुर के कमरे में आ जाता और किसी किसी दिन उनके आदेश पर उच्च स्वर में नाम लेने लगता। दक्षिणेश्वर में लाटू के तपस्वी जीवन के दिन इसी प्रकार बीते थे।

◘

Blame none of your faults, stand upon your own feet, and take the whole responsibility upon yourselves.

—**Swami Vivekananda**

With Best Compliments From -

Phone 664 500
665 680

BHARATI ENGINEERING ENTERPRISES

9 BENARAS ROAD

HOWRAH—6

स्वामी विवेकानन्दजी की १२५वीं जन्मवार्षिकी महोत्सव

(१२ जनवरी १९८८ से १२ जनवरी १९८९)

इस पावन अवसर पर पाठकों के समक्ष

विवेकानन्द साहित्य

(१० खंडों में, प्रत्येक खंड लगभग ४५० पृष्ठों का)

का एक सस्ता संस्करण
प्रस्तुत करते हुए हमें अपार हर्ष हो रहा है

मूल्य	रु. १००/- मात्र
अग्रिम बुकिंग मूल्य	रु. ६० /- मात्र
(डाक व्यय अलग से)	रु. १५ /- मात्र
पुस्तक वितरण तिथि	१२ जनवरी १९८९

भारतीय जन के मानसपटल पर स्वामी विवेकानन्दजी एक अमिट छाप छोड़ गये हैं। निःसन्देह उनके विचारों को देश एवं विदेश के हर घर में पहुँचाने का कर्त्तव्य हर भारतीय का है। अब तक स्वामीजी का सम्पूर्ण साहित्य जिसमें उनके व्याख्यान, पत्र, रचनाएँ आदि समाविष्ट हैं २७५/ रुपये में उपलब्ध था। इस वर्ष स्वामीजी की १२५ वीं जन्मवार्षिकी सारे विश्व में धूम-धाम से मनायी जा रही है। इस पुनीत अवसर पर हमने उनके साहित्य के अंग्रेजी एवम् हिन्दी संस्करण को अत्यल्प मूल्य में १२ जनवरी १९८९ से उपलब्ध कराने का निश्चय किया है।

चूँकि परिमित संख्या में ही इसे छापा जा रहा है, अतएव इच्छुक व्यक्तियों से अनुरोध है कि निराशा से बचने के लिए वे शीघ्रातिशीघ्र अग्रिम बुकिंग कर लें।

साथ ही १२ जनवरी १९८९ तक हमारी अन्य सारी पुस्तकों पर १०% की छूट दी जा रही है!

लिखें :—

अद्वैत आश्रम

५ डिही इन्टाली रोड

कलकत्ता ७०० ०१४

बैद्यनाथ च्यवनप्राश
अब पोलीजार में
उपलब्ध
स्फूर्ति
कफ खांसी नाशक
यौवन
दिमागी ताजगी
विकास
बलवर्द्धक
बैद्यनाथ
च्यवनप्राश
अवलेह स्पेशल
मकरध्वज अभ्रक केशर युक्त
श्वासकास और त्रिदोषनाशक
बलवर्द्धक आयुर्वेदिक टॉनिक
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड
पटना-८००००१
आदर्श आयुर्वेदिक
पारिवारिक टानिक
कहीं आपके डिब्बे में "मोपेड" तो नहीं ?
प्रत्येक एक किलो स्पेशल और साधारण एवं ५०० ग्राम स्पेशल च्यवनप्राश के डिब्बे में इनामी कूपन प्राप्त कर "मोपेड" एवं ३०६ अन्य पुरस्कार प्राप्त करने का सुनहरा अवसर ।
बैद्यनाथ ७०० से अधिक दवाएं पांच आधुनिक कारखानों में तैयार करता है
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड
बैद्यनाथ भवन रोड, पटना-१